Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उर्दू क्या है ?

सं०
१०

श्रीनारायण चतुर्वेदी

उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उर्दू क्या है?

श्रीनारायण चतुर्वेदी

उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकाशकीय

उ० प्र० सरकार ने राजर्षि का जन्मशती वर्ष उनके कार्य और जीवन के उद्देश्य को प्रायः उलट कर मनाया है। इस कार्य से प्रदेश की जनता का उत्तेजित होना स्वाभाविक है। उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन राजर्षि ने सन् १९३७ में पंडित श्रीनारायण चतुर्वेदी के माध्यम से स्थापित किया था। इसलिए सम्मेलन का कर्तव्य हो गया कि वह इस अशुभ कार्य का विरोध करे। सम्मेलन ने उसके विरोध में जनता को स्थिति से अवगत कराने के लिए सात पैम्फलेट प्रकाशित किये। इनमें एक हमारे उपाध्यक्ष प्रोफ़ेसर वासुदेव सिंहजी ने और छः श्री चतुर्वेदीजी ने लिखे हैं। इस आठवें पैम्फलेट ने एक पुस्तिका का रूप ले लिया है। इसमें उर्दू की उत्पत्ति, उसके स्वरूप, उसकी स्थिति और उसे द्वितीय राज्यभाषा बनाने से उत्पन्न होनेवाली समस्याओं की सामान्य विवेचना है। सम्मेलन ने अभी तक जो पैम्फलेट छापे हैं वे हज़ारों की संख्या में मुफ़्त वितरित किये गये हैं।

इस पुस्तिका का आशातीत स्वागत हुआ। बिना किसी प्रचार के तीन महीने में मुद्रण प्रायः समाप्त हो गया और माँग बराबर बनी हुई हैं। अतएव यह दूसरा मुद्रण किया जा रहा है। इस बीच हमें जो कागज मिला वह अधिक महँगा है। अतएव इसका मूल्य बढ़ाना पड़ा, यद्यपि अब भी वह लागत से कम है।

प्रथम संस्करण में हमने सरकार की द्विभाषी नीति पर सम्मेलन के विचार व्यक्त किये हैं और वह आज भी उन पर दृढ़ है। राजर्षि की जन्मशती पर हम कोई दिखाऊ समारोह न करके उनके कार्य को आगे बढ़ाकर तथा संघर्ष को जारी रखकर मना रहे हैं। इसमें उत्तर प्रदेश के विद्यार्थियों ने जो उत्साह और क्रियाशीलता दिखलायी है वह अत्यंत प्रशंसनीय है। वे हमारे संघर्ष के अग्रदूत हैं। हम उन्हें बधाई देते हैं। आशा है कि हिन्दीप्रेमी बुद्धजीवी भी अपना सहयोग देंगे।

उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
प्रतापगढ़

डॉ० राजेश्वर सहाय त्रिपाठी
ऐडवोकेट, प्रधान मंत्री

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उर्दू 'मुश्तर्का ज़बान' नहीं

उर्दू के हिमायती बार-बार यह कहते हैं कि उर्दू का जन्म भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के सहयोग से हुआ। यह अर्द्ध सत्य और भ्रामक है। यह सही है कि उसका जन्म भारत में हुआ, किन्तु उसमें भारत के निवासियों का सहयोग नहीं था। उसे मध्य युग में पश्चिमी और मध्य एशिया के विदेशी आक्रमणकारियों ने अपनी ज़रूरत और सहूलियत के लिए बनाया था। वे आक्रमणकारी इस देश में लूटमार करने के लिए आते थे। आरम्भ में वे लूटमार कर, मंदिरों को ध्वस्त कर, स्त्री-पुरुषों को मारकर तथा कुछ को दास बनाकर उन्हें साथ लेकर लौट जाते थे। बाद में उनमें से कुछ ने यहाँ अपने राज्य कायम कर लिये और यहीं रहने लगे। किन्तु अपने सैनिक बल को बनाये रखने के लिए वे मध्य एशिया के देशों से बराबर नये सैनिकों को बुलाया करते थे। जब वे सैनिक भारत में लूटमार करने आते तो उनके आक्रमण का इरादा पड़ोसी देशों में फैल जाता और कितने ही अन्य लोग लूट में शामिल होने के लिए उनके साथ हो जाते। जब महमूद गजनी ने सोमनाथ पर आक्रमण करने का अभियान किया, तब एक इतिहासकार के अनुसार—Marching at the head of his picked warriors (he) was followed besides by a body of 30,000 volunteers from Turkistan and other countries attracted by prospects of plunder. (The Crescent in India, page 55) (अपने चुने हुए सैनिकों की सेना के अतिरिक्त उसके साथ तीस हजार व्यक्ति तुर्किस्तान तथा अन्य देशों से लूट के लिए साथ हो लिये)। ये लूटमार करनेवाले आक्रमणकारी अरब, ईरान, अफगानिस्तान के अनेक प्रान्तों तथा तूरान, बल्ख, बुखारा आदि मध्य एशिया के अनेक देशों से आते थे। ये लोग नगरों के बाहर छावनी में रहते थे। उन सबकी भाषाएँ अलग-अलग थीं। कोई अरबी बोलता था, कोई फ़ारसी, कोई पश्तो तो कोई तुर्की। न वे आक्रमण-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारी यहाँ की भाषा जानते थे और न एक दूसरे की । इसलिए उन्हें आपस में एक-दूसरे की बात समझने में बड़ी कठिनाई होती थी ।

आवश्यकता आविष्कार की जननी है । अतएव उन्होंने यहाँकी भाषा की क्रियाएँ, विभक्तियाँ और कुछ आवश्यक शब्द सीखकर उसके ढाँचे में अपनी-अपनी बोलियों के शब्दों को मिलाकर बोलना आरंभ किया । अरबी, फ़ारसी, पश्तो, तुर्की आदि अनेक भाषाओं का एक विचित्र 'काकटेल' बन गया । यह बोली आक्रमणकारियों ने अपनी सुविधा या काम चलाने के लिए बनायी थी और आपस में वही बोलने लगे । इसे बनाने में यहाँके हिन्दू निवासियों का कोई हाथ न था । यह उन्हीं लोगों तक सीमित रही । यहाँ के जो लोग उनसे बात करना चाहते, वे भी उन्हें अपनी बात समझाने के लिए, उसी खिचड़ी भाषा में बोलते थे । जिस प्रकार ब्रिटिश काल में गोरी फौजों की छावनियों में एक विचित्र 'गोराशाही' हिन्दी चल गयी थी, वह खिचड़ी बोली कुछ-कुछ उसी प्रकार की थी । गोराशाही बोली में हिन्दी के साथ केवल अंग्रेजी शब्दों का मिश्रण था, किन्तु इन आक्रणमकारी लोगों की छावनी की बोली में अरबी, फ़ारसी, पश्तो, तुर्की आदि अनेक भाषाओं का मिश्रण था । गोराशाही बोली की तरह छावनी की 'काकटेल' बोली का ढाँचा हिन्दी का ही था । यह बोली छावनी तक सीमित रही ।

छावनी को 'लश्कर' या 'उर्दू' भी कहते थे । अतएव वह लश्कर या उर्दू की बोली कही जाने लगी । आगे चलकर इस बोली के लिए 'उर्दू' शब्द का प्रयोग रूढ़ हो गया ।

ऊपर उर्दू की उत्पत्ति का जो वर्णन दिया गया है, वह हमारा नहीं है । स्वयं उर्दू के विद्वानों ने भी यही लिखा है । प्रमाण के रूप में लखनऊ की बेगम आबिद मिर्जा की ये पंक्तियाँ हैं :—

जिसे कहते हैं उर्दू वह है लश्कर
सुनी बातें जो लश्कर की ज़बाँ से
उसी का नाम उर्दू हो गया है,
कोई मुनकिर नहीं मेरे बयाँ से ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुई जब छावनी देहली में ऐ बी !
वहाँ लोग आ गए सारे जहाँ से
हुआ हर क़ौम के लोगों का मजमा
कोई काबुल, कोई माज़िन्दरां* से
कोई था अरब, और कोई अजम* था,
कोई शीराज़, कोई शेरवाँ* से।
जो की उन लोगों ने आपस में बातें
तो उर्दू की ज़बाँ निकली वहाँ से।

—K. A. Hamied : What is Hindi ? Page 21

(* मध्यपूर्व के नगरों के नाम हैं, अरब के बाहर के देशों को अजम कहते हैं।)

इससे स्पष्ट है कि उर्दू हिन्दू-मुस्लिम सहयोग से उत्पन्न नहीं हुई। उसे उन विदेशी आक्रमणकारियों ने केवल अपनी सुविधा के लिए बनाया था जो इस देश को लूटने और पराधीन करने आये थे। इसे उत्पन्न करने में हिन्दुओं का कोई हाथ नहीं था। वह विदेशी आक्रमणकारी लोगों ने बनायी। हम भारतवासियों का उसके बनाने में कोई हाथ नहीं।

यह तो 'उर्दू' की पैदाइश की असलियत है। कई सदियों तक इस खिचड़ी बोली को हिन्दुओं को कौन कहे, सुशिक्षित मुसलमानों ने भी महत्त्व नहीं दिया और वह मुस्लिम आभिजात्य वर्ग में प्रवेश नहीं कर पायी।

उदाहरणार्थ, दिल्ली में तोमरों के बनाये 'कीर्तिस्तम्भ' (जिसे अब कुतुबमीनार कहते हैं) पर मुस्लिम विजेताओं के जो लेख खुदे हैं, वे अरबी-बहुल फ़ारसी में हैं। पुराने देवनागरी लेखों के कुछ अंश भी मिलते हैं, पर उर्दू का एक भी नहीं है। मुगल काल में भी किसी इमारत में तथाकथित उर्दू में कोई लेख हमारी जानकारी में नहीं मिला। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक इस खिचड़ी बोली को मान्यता प्राप्त न थी।

मुस्लिम दरबारों में हिन्दी

मुस्लिम दरबारों में संगीतज्ञ भी रहते थे। लोदी वंश का सिकंदर शाह बड़ा प्रतापी, दुर्दान्त और शक्तिशाली सुलतान था। वह संगीतप्रेमी भी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था । उसके दरवार में जो गीत गाये जाते थे वे तत्कालीन हिन्दी में होते थे । उसके दरबारी संगीतज्ञों में गोपाल नायक नाम का प्रसिद्ध संगीतज्ञ था । उसका एक गीत देखिए--

दिल्लीपति नरेन्द्र सिकन्दर साह जाके डर धरणी हिलहिलायो
दलसाह महिला अपार अगाध जहाँ गुणीजन विद्या तहँ किश्त वायो ।
नाद विद्या गावे सुनि आलम धावै
दान दुनी से तुम ही अवतार भायो
कहत नायक गोपाल चिरंजीव रहौ
पादसाह गहन ते साथ मृग धायो ।

यह सिकंदर शाह के समय (१४८९-१५२७ ई०) की हिन्दी भाषा का नमूना है । यह विशुद्ध दरबारी कविता है । इसमें शायद दरबार के प्रभाव से 'किश्त' 'आलम' ऐसे विदेशी शब्द ले लिये गये हैं और 'दल' के साथ 'साह' और 'वादशाह' को 'पादसाह' करके हिन्दी की विदेशी शब्दों को ग्रहण करने और उनका हिन्दीकरण करने की प्रवृत्ति का प्रमाण मिलता है । सिकन्दर के समय ही नहीं, अकवर के समय में भी दरबार में जो संगीतज्ञ रहते थे वे हिन्दी में ही गीत गाते थे । अकवर के दरबार में गाये जानेवाले एक ध्रुपद का नमूना देखिए जो प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन ने गाया था :--

आदिदेव महादेव महेश्वर ईश्वर हर
नीलकंठ गिरिजापति कैलाशवासी
शिवशंकर भोलानाथ गंगाधर
रूप वहुरूप भयानक वाघंवर भवर
खप्पर त्रिशूलधर
तानसेन के प्रभु दीजै नादविद्या
संगीत सो गाऊँ वजाऊँ बीना कर ।

ये नमूने सिकंदर शाह और अकवर के समय की हिन्दी के हैं जो दिल्ली और आगरे के दरबारों में गायी जाती थी । किन्तु उस समय की उर्दू की खिचड़ी बोली के नमूने नहीं मिलते क्योंकि उसका शिष्ट समाज या साहित्य में चलन नहीं था ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुगल दरबारों में हिन्दी कवियों की कितनी पहुँच और क़द्र थी, और उन कवियों में (जो जनता की भावना व्यक्त करते थे) बादशाह अकबर के प्रति कितना आदर और सद्भावना थी, यह उस समय के एक सामान्य कवि होलाराय के इस छन्द से स्पष्ट है :

दिल्ली से न तखत ह्वैहैं, बखत* ना मुग़ल जैसे,
ह्वैहैं ना नगर बढ़ि आगरा नगर से ।
गंग से न गुनी, तानसेन से न तानबाज,
मान से न राजा, औ न दाता बीरबल से ।
खान खानखाना से, न नर नरहरि से,
ह्वैहैं न दीवान कहूँ निडर टडर† से,
नवौ खण्ड, सातौ द्वीप, सात हू समुद्र पार
ह्वैहैं न जलालुद्दीन साह अकबर से ।

इनमें गंग, नरहरि, अब्दुल रहीम ख़ानख़ाना, बीरबल जाने-माने कवि हैं । बीरबल और खानखाना उच्च पदों पर थे, किन्तु कविता भी करते थे । राजा मानसिंह कविताप्रेमी और कवियों के आश्रयदाता थे । बादशाह अकबर के बनाये ब्रजभाषा के छन्द भी मिलते हैं । टोडरमल की भी चर्चा इन्हीं हिन्दीप्रेमियों के साथ की गयी है । इस छन्द से स्पष्ट है कि अकबर के दरबार में हिन्दी कविता का कितना मान था और कवियों के हृदय में उनके लिए कितना आदर था । बादशाह के दरबार में हिन्दी के कवियों के रहने के कारण, उसके अनुकरण में, सूबेदारों, नवाबों तथा अमीरों के छोटे दरबारों में भी हिन्दी के कवि रखे जाते थे और उच्च वर्ग के हिन्दू-मुसलमानों में ब्रजभाषा हिन्दी की क़द्र होती थी ।

औरंगज़ेब के बाद मुगल साम्राज्य कमज़ोर हो गया । सन् १७१३ ई० में फ़र्रुखसियर दिल्ली का बादशाह बना । वह इतिहास-प्रसिद्ध सैयद बंधुओं के हाथ की कठपुतली था । इन सैयद बंधुओं में बड़े भाई का नाम सैयद हुसेन अली था । वह 'अमीरुल् उमरा' कहलाता था । उसके निजी दरबार

---

*बखत = वक्त, समय †टडर = टोडरमल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में बिलग्राम (हरदोई) के अब्दुल जलील नाम के एक विद्वान भी कुछ दिनों रहे। वे अपने पुत्र को फारसी में पत्र लिखा करते थे। उन पत्रों को १७६८ ई० में 'ओरियिंटल मिसलेनी' नामक पुस्तक में छाप दिया गया था। उससे दो उद्धरण यहाँ दिये जाते हैं। अमीरुल् उमरा के एक पुत्र पैदा हुआ। उसके संबंध में अब्दुल जलील अपने पुत्र को लिखते हैं :—

"सेह तारीख अरबी व फ़ारसी व हिन्दी तवल्लुद
पिसरे मज़कूर दर रंगे अलाहिदा व असलूब दुआ
गुफ़्ता अज़ नज़रे फ़ैज असर गुज़रानीद
बिसियार महज़ूज़ शुदन्द"

इसका आशय है—पुत्र उत्पन्न होने पर मैंने अरबी, फ़ारसी और हिन्दी में पुत्रजन्म की तारीख अलग-अलग रंग (शैली) में लिखीं। उन्होंने अपने पत्र में उस हिन्दी दोहे को फ़ारसी लिपि में लिखा भी है। वह दोहा है :—

पुत्र जन्म संवत कहूँ बंस हुसेन महीप
चिरजीवै जुग-जुग सदा यह हुसेन कुलदीप।

एक दूसरे पत्र में उन्होंने अपने पुत्र को लिखा है :—

"रोज़े दर मजलिस आली ज़िक्र कवितहाय आलम दर्मियान आमद। नवाब साहब अज़ कवितहाय आलम महज़ूज अन्द। व बन्दा फर्मूदन्द कि कवितहाय आलम बराय वहम रसानन्द बिनावर आँ कल मे मी करदद कि हर क़दर कवित आलम व सीख कि हर दो यके अन्द अज़ पेश हरबंस मिसिर व दिवाकर व पिसरान गेहसी व दीगर मर्दुम वहम रसद बर ख़त हिन्दी नवीसांदा यक ज़ुज़ दो ज़ुज़ हर चे मयस्सर आयद ज़ूद बफ़रस्तन्द व दर ख़त हिन्दी तहरीफ़ कम अस्त व हिन्दी रा कि ब फ़ारसी नवीसन्द दर ख्वाँदन तहरीफ बिसियार वाक़ै मी शवद।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

—नवाव साहव से वातचीत में आलम कवि के कवित्तों की चर्चा होने लगी। आलम कवि की कविताएं नवाब साहव को बहुत प्रिय हैं। उन्होंने मुझसे आलम के जितने कवित्त मिल सकें उन्हें एकत्र कर देने को कहा। अतएव तुम (बिलग्राम के) हरबंस मिश्र, दिवाकर, गेहसी के पुत्रों तथा अन्य लोगों से आलम के जो कवित्त या सीख (जो दोनों एक ही चीज हैं) मिलें उन्हें एक या दो वार करके हिन्दी (देवनागरी) लिपि में लिखकर भेज दो; क्योंकि फारसी लिपि में लिखने से हिन्दी शब्द कई ढंग से पढ़े जा सकते हैं (अर्थात शुद्ध रूप से नहीं)।

इससे स्पष्ट है कि उन दिनों तक मुसलमान उच्च वर्ग में तत्कालीन हिन्दी (ब्रजभाषा) केवल चलती ही न थी, प्रत्युत वे उसे समझते, उससे आनन्द लेते और उसके रसिक थे। उस समय तक उच्च और आभिजात्य वर्ग के मुसलमानों में उर्दू का चलन नहीं था।

इस पत्र से यह भी मालूम होता है कि उस समय के मुसलमान विद्वान भी अनुभव करते थे कि फ़ारसी लिपि शुद्ध रूप में हिन्दी लिखने में असमर्थ है।

फ़ारसी का चलन

अकबर के पहले तक मुसलमान राज्यों के कई विभागों में हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रयोग होता रहा। माल विभाग का काम हिन्दी और देवनागरी लिपि में होता था। शेरशाह सूरी ने टोडरमल को अपना दीवान नियुक्त किया था। हुमायूँ के ईरान से लौटने के बाद टोडरमल उसके भी दीवान बने रहे। देशनिकाले की अवस्था में हुमायूँ कई वर्ष ईरान में वहाँ के शाह का मेहमान रहा। ईरान उस युग का अत्यन्त समृद्ध और सुसंस्कृत देश था। उसकी संस्कृति वहुत उन्नत थी। उसकी भाषा एवं साहित्य उन्नत ही नहीं, बड़े ही उच्च कोटि के थे। इसलिए फ़ारसी सम्पूर्ण मध्यपूर्व एशिया की सम्पर्क भाषा या लिंगुआ फ्रैंका के रूप में फैल गयी थी। ईरान के शाह का दरबार अपनी शान और शिष्टाचार के लिए प्रख्यात था। वह मुस्लिम जगत में आदर्श माना जाने लगा था। हुमायूँ इन सब बातों से बहुत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रभावित हुआ। उसके लौटने पर मुगल दरबार में ईरानी दरबार के शिष्टाचार चलने लगें और फ़ारसी भाषा का उपयोग बढ़ा। अकबर के शक्ति में आते-आते फ़ारसी का उपयोग बहुत बढ़ गया था। उसीमें फ़रमान निकलते, उसीमें सनदें दी जातीं, उसीमें आवेदनपत्र लिये जाते तथा पत्राचार किया जाता। राजा टोडरमल ने उसका इतना प्रचलन देखकर अपने माल विभाग में भी हिन्दी और देवनागरी का प्रयोग वन्द कर फ़ारसी भाषा और लिपि चला दी। इस प्रकार फ़ारसी सम्पूर्णतः मुग़ल साम्राज्य की राजभाषा हो गयी। शासन के प्रत्येक स्तर पर फ़ारसी का ही प्रयोग होता था। अतएव जो हिन्दू सरकारी नौकरी चाहते या जिनका सरकार के किसी स्तर पर काम पड़ता, उनके लिए भी फ़ारसी पढ़ना आवश्यक हो गया था। मुगल दरबार और शासन में फ़ारसी का ऐसा प्रसार और एकाधिपत्य था कि छत्रपति शिवाजी ने जो पत्र महाराज जयसिंह को भेजा, वह फ़ारसी में था।

आजकल जिस प्रकार सरकारी काम के लिए या सरकार से काम लेने के लिए अंग्रेजी का उपयोग करने के लिए उसका पढ़ना आवश्यक है, उन दिनों उसी प्रकार फ़ारसी का प्रयोग आवश्यक था। मुसलमान तो फ़ारसी पढ़ते ही थे, सरकारी नौकरी पाने के लिए अनेक हिन्दू भी फ़ारसी पढ़ने लगे थे। आज जिस प्रकार अंग्रेजी पढ़े लोग ही उच्च पद पाते हैं उसी प्रकार उन दिनों अच्छी फ़ारसी जाननेवाले ही उच्च पद पाते थे। वे आपस में बहुधा फ़ारसी में वातचीत और पत्र-व्यवहार भी करते थे। उन दिनों फ़ारसी उसी प्रकार फैल गयी और उसे वैसा ही सम्मान मिलने लगा जैसा आज अंग्रेजी को प्राप्त है। इस देश में आजकल राजकाज के लिए ही नहीं, बल्कि समाज में सभ्य और सुसंस्कृत समझे जाने और आदर पाने के लिए भी अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। वैसे हीं उन दिनों फ़ारसी का जानना और उसका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था।

प्रकृति और मनोविज्ञान के नियम अटल होते हैं। जैसे हमारी भाषा पर आज अंग्रेजी का प्रभाव पड़ा, वैसे ही मुस्लिम शासन में फ़ारसी का प्रभाव पड़ा। अंग्रेज़ों के काल में दफ़्तरों में विभिन्न सरकारी काम के लिए भाषाएं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निश्चित कर दी गयीं थीं। ज़िलों और अनेक दफ़्तरों में दो विभाग होते थे—इंग्लिश आफ़िस और वर्नाक्यूलर आफिस। वर्नाक्यूलर आफ़िस में क्षेत्रीय भाषा और लिपि का प्रयोग होता था। इसके विपरीत मुस्लिम राज में सभी छोटा बड़ा काम फ़ारसी में होता था। अतएव फ़ारसी का उपयोग अंग्रेज़ी के उपयोग की अपेक्षा अधिक व्यापक था। फ़ारसी अंग्रेज़ी की अपेक्षा चौगुने पँचगुने काल तक राजभाषा रही। उसका प्रभाव हमारी बोलचाल की भाषा पर पड़ना अनिवार्य था जैसे आज अंग्रेजी का पड़ रहा है।

हमारी बोलचाल की भाषा में फ़ारसी के अनेक शब्द प्रयुक्त होने लगे। उदाहरण के लिए सूर और तुलसी ने भी 'गुलाम' 'गरीबनिवाज' 'नमकहरामी' आदि शब्दों का प्रयोग किया है।

एक मुंशी जी ने, जो अंग्रेजों की अमलदारी के पहले नवाबी देखे हुए थे, हमें लड़कपन में फ़ारसी-मिश्रित संकर भाषा के अनेक नमूने सुनाये थे। उनमें से अब दो ही याद रह गये हैं। उस समय खड़ी बोली का विकास नहीं हुआ था। लोग अपनी क्षेत्रीय भाषा बोलते और उसीमें फ़ारसी शब्द मिलाते थे।

पहला उदाहरण

"मुशफ़िकन के लड़का ऐसे बदमाश हुइ गए हैं कि बाग़ीचों में जाइकें दरख्तावेजी और ख़िश्तन्दाज़ी करिबो करत हैं। जि नाहीं जान्त कि जो कहूँ गिरि पड़े तो दन्दानशिकस्ता काके ह्वै जैहें।

दूसरा उदाहरण

"रामकली की बालिदा कौ जबसें इन्तकाल भओ है तब सें कलिया कौ तौ कबहूँ इत्तिफाकई नाहीं आओ।

(मुंशी जी की पुत्री का नाम रामकली था)

यही संकर भाषा फ़ारसी पढ़ने और उसमें काम करनेवालों में—चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान—चलने लगी। सामान्य लिखापढ़ी और पत्र-व्यवहार में भी फ़ारसी लिपि का प्रयोग होता था। इस देश में बसे विदेशी मुसलमान

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बहुत दिनों तक अपने घरों में अपनी मूल मातृभाषाएँ बोलते रहे (जैसे मुग़ल सम्राट हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर, घर में मातृभाषा तुर्की और दरबार में फारसी, प्रजा से हिन्दी)। किन्तु कई सदियों तक इस देश में रहते-रहते वे अपनी मातृभाषाएं भूलने लगे और घरों में क्षेत्रीय भाषाओं या इस संकर भाषा का प्रयोग करने लगे।

उच्च वर्ग के मुसलमानों के घरों में बोली जाने के कारण और उनमें फ़ारसी के उच्च अध्ययन के रिवाज के कारण उसमें अपेक्षतया फ़ारसी के शब्द अधिक होते गये। किन्तु निम्न वर्ग के मुसलमानों की भाषा पर उसका प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि उनमें फ़ारसी का पठन-पाठन कभी लोकप्रिय नहीं हुआ। खेती, दस्तकारी में उन्हें फ़ारसी की आवश्यकता ही नहीं थी।

इस प्रकार कई सदियों तक उत्तर भारत में फ़ारसी राजभाषा वने रहने के कारण एक संकर भाषा वनी जिसे उच्च वर्ग के मुसलमानों ने अपनाया और इसे ही वे 'उर्दू' कहने लगे। मूल उर्दू की ज़बान से (जो छावनी में वनी थी) वह वहुत भिन्न हो गयी थी। किन्तु जनता अपनी भाषा बोलती रही।

यह संकर भाषा वहुत दिनों तक आज की बंबइया और कलकतिया हिन्दी की तरह कामचलाऊ बोली का काम देती रही, परंतु उसमें कोई साहित्य नहीं रचा गया। सूर, तुलसी, देव, बिहारी, मतिराम, भूषण आदि सैकड़ों कवि उसी युग में हिन्दी में रचना कर रहे थे जब फ़ारसी राजभाषा थी। मुसलमान फ़कीर और औलिया भी इसी हिन्दी का, जिसे वे 'भाखा' कहते थे, उपयोग करते थे और उसमें रचनाएं करते थे। शाहजहाँ द्वितीय और मुहम्मद शाह रँगीले के समय तक, जव तक उस संकर भाषा में उल्लेखनीय और महत्त्वपूर्ण साहित्य लिखा जाना आरम्भ नहीं हुआ, तब तक मुस्लिम विद्वान फ़ारसी भाषा में ही पुस्तकें लिखते रहे। उन दिनों फ़ारसी में लिखना प्रतिष्ठा की वात समझी जाती थी। ग़ालिब तक ने उर्दू से अधिक फ़ारसी में काव्य रचना की। पतनशील (Decadent) मुगल साम्राज्य के अन्तिम दिनों में उर्दू में काव्य रचना आरम्भ हुई और उसमें ज़ौक, मीर, ग़ालिब के समान महान कवि हुए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

धीरे-धीरे दिल्ली उजड़ गयी और कितने ही कवि दिल्ली छोड़कर लाहौर हैदरावाद, रामपुर और लखनऊ चले गये। अधिकतर अवध के दरबार में प्रोत्साहन और आश्रय पाने के लिए आ गये। दुर्भाग्य से उस समय अवध का शिया राज्य भी पतनशील होने लगा था। इस शिया राज्य में फ़ारसी अधिक ग्राह्य थी। इसलिए यहाँ उर्दू का फ़ारसीकरण और अधिक हुआ। यहाँके 'नासिख' नामक प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण कवि ने तो उसका खुलकर प्रचुर प्रयोग किया। उनकी नक़ल यहाँके दूसरे कवियों ने भी की। नासिख की फ़ारसी-प्रियता और फ़ारसी शब्दों का प्रचुर प्रयोग करने का परिणाम यह हुआ कि उर्दू गद्य में भी फ़ारसी का प्रयोग वढ़ गया।

उर्दू में फ़ारसी के प्रचुर प्रयोग के दो परिणाम हुए। एक तो यह कि वह यहाँकी जनभाषा से दूर ही नहीं चली गयी, वह उनके लिए दुरूह भी हो गयी। दूसरा यह कि फ़ारसी पर आश्रित होने के कारण वह मध्यपूर्व के संदर्भों और संस्कृति की वाहिका वनी और भारतीय संस्कृति और साहित्यिक परम्पराओं से अलग हो गयी। इसीलिए भारत में उत्पन्न होने पर भी उसकी आत्मा भारतीय नहीं है। वह एक अति अल्पसंख्यक 'एलीट' की भाषा वनकर रह गयी। वह अपने वर्तमान रूप में इन्हीं कारणों से वहुसंख्यक लोगों को ग्राह्य नहीं है। वह केवल एक अति अल्प मुस्लिम एलीट को प्रिय है जो मुसलमानों में भी बहुत थोड़े अनुपात में है।

मुसलमानों के दो वर्ग और उनकी भाषा

मुसलमानों में दो वर्ग हैं। एक तो वे जो सुशिक्षित, समृद्ध, प्रभावशाली हैं। इसीको अंग्रेजी में एलीट (elite) या आभिजात्य वर्ग कहते हैं। दूसरा वर्ग वह जो किसानी, दस्तकारी, छोटी नौकरियाँ या मजदूरी करता है। पहिला वर्ग अधिकतर नगरों में रहता है। कुछ दिन पहिले तक जब जमींदारी थी तव इस वर्ग के कुछ लोग गाँवों में भी रहते थे, और वहाँ भी समृद्ध, शिक्षित और प्रभावशाली थे। अब गाँवों में इस वर्ग के लोग कम ही रह गये हैं और दिनोंदिन कम होते जा रहे हैं। दूसरे वर्ग के अधिकांश मुसलमान गाँवों में रहते हैं। इस वर्ग के दस्तकार, छोटी नौकरियों (चपरासी आदि)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में लगे लोग और मज़दूरी करनेवालों का एक भाग शहरों में भी रहता है। द्वितीय वर्ग के मुसलमानों को निम्न श्रेणी के मुसलमानों के अंतर्गत रखा जाता है। मुसलमानों में इनकी संख्या ६०-६५ प्रतिशत है। अतएव इन्हीं को मुस्लिम जनता (masses) कहना उचित होगा। इस वर्ग पर पहले वर्ग के मुसलमानों का यानी मुस्लिम 'एलीट' (अभिजात्य वर्ग) का भारी प्रभाव है। किन्तु इन दोनों वर्गों के मुसलमानों की भाषाओं में भारी अंतर है। यह अन्तर क्यों हैं ? इसे जानने के लिए कुछ ऐतिहासिक और सैद्धांतिक बातों का जानना आवश्यक है।

हज़रत मिर्जा बशीर अहमद, एम० ए० के (Moral and Spiritual Training, प्रकाशक, दावत ओ तबलीग़ क़ादियान १६७०, प्रथम पृष्ठ) अनुसार—

The Study of the Holy Quran reveals that the spiritual mission of Islam is divided into two basic sections. First, Tabligh or preaching i.e. bringing the disbelievers into the fold of the Faith, by conveying to them the meaning of truth. Secondly Tarbiyat or training and discipline i.e. establishing and sustaining the faithful on the high pedestal of devotion and virtuous acts.

उक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि इस्लाम के मिशन को पूरा करने के लिए दो रास्ते अपनाये गये। पहला तबलीग़ (प्रचार) यानी काफ़िरों को मुसलमान बनाना। दूसरा तर्बियत (शिक्षा) यानी कलामे पाक में आस्था को दृढ़ करना। सच्चे या पक्के मुसलमान का पहिला कर्त्तव्य इस्लाम का प्रचार कर गैरमुसलमानों का धर्मपरिवर्तन कराना है। इस्लाम ही सच्चा धर्म है, यह ईमान कैसे लाया जाय ? स्पष्ट है कि जो विद्वान या औलिया हैं वे समझा-बुझाकर या अपने उच्च जीवन या चमत्कारों द्वारा यह ईमान ला सकते हैं। किन्तु जो मुसलमान लुटेरे दूसरे देशों पर आक्रमण करने गये वे विद्वान नहीं थे। वे न समझा-बुझा सकते थे और न उच्च जीवन से या चमत्कार दिखाकर यह कार्य कर सकते थे। वे केवल तलवार के जोर पर ही यह कार्य कर सकते थे। अतएव जिन-जिन देशों पर मुसलमान सैनिकों ने आक्र-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मण किया और उन्हें जीता, वहाँ उन्होंने इस्लाम का प्रचार इसी प्रकार किया। उदाहरण के लिए ईरान में अग्निपूजक (पारसी) रहते थे और अफ़ग़ानिस्तान में बौद्ध और हिन्दू। वहाँ मुसलमान आक्रमण के वाद सब मुसलमान बना लिये गये। ईरान में जो मुसलमान होने से बचना चाहते थे वे भागकर भारत में आ गये और आज भी यहाँ पारसियों की वड़ी संख्या है।

मुसलमान आक्रमणकारियों ने जब भारत पर आक्रमण किया तब भारत में नगरों की संख्या कम थी। आवादी भी आज की अपेक्षा बहुत कम थी। जो उच्च वर्ग के लोग थे वे लड़े, मारे गये या भागकर भारत के अन्य भागों में चले गये, किन्तु गाँवों के कितने ही किसान और दस्तकार मुसलमान बना लिये गये। फिर भी भारत के गाँव इतने फैले हुए थे कि यह उन्हीं गाँवों में हुआ जिनमें होकर आक्रमणकारी फ़ौजें गुज़री थीं।

जब मुस्लिमों ने यहाँ अपने राज्य स्थापित कर लिये तब इस प्रकार के धर्म-परिवर्तन कम हो गये। जनाब अज़हर अली फ़ारूक़ी के अनुसार (उत्तर प्रदेश के लोक गीत नामक पुस्तक में, जिसे तरक्की उर्दू ब्यूरो नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है)——

"मुसलमान फ़ातेह* की हैसियत के अलावा मरंजां व मरंज† किस्म के अहले-दिल और आज़ाद खयाल सूफ़ी दरवेशों की हैसियत से भी यहाँ आये। उनका मक़सद इस्लाम की तवलीग़ करना तो था मगर तरीक़-ए-कार‡ अहले शरीयत से जुदागाना था। वह यहाँके सन्तों और भक्तों से भी मुतास्सर होते रहे और आपस में मेलजोल और वाहमी इरत्वात के लिए शरीयत में लचक पैदा करते रहे। इससे क़ता-ए-नज़र मुसलमान घरानों में नौ मुस्लिम हिन्दू औरतों का भी ज़ोर रहा। वह किसी तौर पर अपने रस्मो-रिवाज न भुला सकीं। दिवाली का त्योहार इनके सामने था। वह किसी तरह दिवाली की कुछ चीज़ों की यादगार वाक़ी रखना चाहती थीं। चुनांचे घर लीपना-पोतना और उसकी सफ़ाई करना, धनतेरस के दिन बर्तन

---

* फ़ातेह—विजयी

† मरंजां व मरंज—शान्तिप्रिय

‡ तरीक-ए-कार—काम करने की विधि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बदलना और खरीदना, चिराग़ाँ करना, हथिए और दीवट जलाना दीवाली से मुस्त-आर लेकर शबेबरात में दाखिल कर दी गयीं। इससे बढ़कर यह हुआ कि सुलतान मुहम्मद क़ुली क़ुतुबशाह और मुग़ल फर्मांरवाँ अकबर आज़म और जहाँगीर ने तो दीवाली को क़ौमी त्योहार की हैसियत दे दी थी। इनके दौरे-हुकूमत में चराग़, आतिशबाज़ी और शाहाना रंगरलियां तो लवाज़मात शब-बरात में शामिल हुयीं।" (उत्तर प्रदेश के लोकगीत, पृष्ठ २९०)

अक़ीक़ा यानी मूंडन

"यह अजब इत्तिफ़ाक़ है कि हिन्दोस्तान की दो रस्में मुंडन और नामकरन की अदायगी अक़ीक़ा एक साथ कर देता है। सिर्फ़ बकरे ज़बह करने का फ़र्क़ है। दूसरे यह कि मुसलमानों में अक़ीक़ा पैदाइश से एक हफ़्ता के अन्दर ही ज़्यादातर हो जाता है और मुंडन कई साल बाद होता है। देहाती मुसलमानों में अक़ीक़े का लफ़्ज़ कम रायज है। वह इसको मुंडन (मूड़न) ही कहते हैं और कई साल बाद कम से कम तीसरे साल बाद बसंत पंचमी के दिन मुंडन होने का रिवाज है······और वही सब कुछ होता है जो (हिंदुओं के) मुंडन में होता है।" (उत्तर प्रदेश के लोकगीत, पृष्ठ २९५)

सेहरा

"शरई नुक्त-ए-नज़र स हर इस्लामी फ़िर्क़े में सेहरा, मकना बाँधना दुरुस्त नहीं है। उलमा मुख़ालफत करते-करते थक गये। समझाते-बुझाते रहे। इस्लाह-उल्-रसूम की किताबें लिखीं गयीं लेकिन अवाम ख़वास ने एक न सुनी और सेहरा बाँधने की रस्म जारी रही। शायर भी सेहरा शहज़ादों की शादियों में लिखते थे।" (उत्तर प्रदेश के लोकगीत, पृष्ठ ३९४)

इससे मालूम हो सकता है कि विजयी होते हुए भी मुसलमानों पर हिन्दू रीति-रिवाजों का कितना प्रभाव पड़ा और वे उनके धार्मिक संस्कारों में कितने पैठ गए। यदि यह धारा चलने दी जाती तो दोनों समुदाय बहुत कुछ निकट आ जाते और सारे देश में एक वास्तविक मिली-जुली संस्कृति हो

दौर—काल

ज़बह—काटना

शरई—मुस्लिम धार्मिक दृष्टिकोण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाती, जो देश की वांछनीय एकता में सहायक होती और उसे दृढ़ करती। किन्तु वह एक दूसरा विषय है। उस पर स्वतन्त्र लेख लिखना होगा। यहाँ तो हमें साधारण और बहुसंख्यक मुसलमानों की भाषा पर विचार करना है।

दिल्ली सल्तनत में इस्लाम (मुस्लिम धर्म) प्रायः राजधर्म हो गया था। क़ाज़ी इस्लामी शरीयत के मुताबिक फ़ैसले करने लगा और मुफ़्ती भी इसी हैसियत से फ़तवे लगाता रहा। ये सब फ़ारसी में होते थे। किंतु जो मुस्लिम औलिया, दरवेश और फ़क़ीर जनता में प्रचार करते वे यदि फ़ारसी का उपयोग करते तो जन-साधारण में इस्लाम का प्रचार नहीं कर सकते थे। उन दिनों भी धार्मिक अवसरों पर भजन, कीर्तन आदि हुआ करते थे जो संगीत प्रधान और हिन्दी में होते थे। इन इस्लामी प्रचारकों ने देखा कि जब तक वे भी उसी हिन्दी का प्रयोग नहीं करते तब तक वे हिन्दू समाज या नवमुस्लिमों में अपना प्रचार नहीं कर सकते। श्री फ़ारुक़ी लिखते हैं——

"इन सबको (मुस्लिम औलियाओं को) अपनी नज़रियात की तलक़ीन के लिए ऐसी शायरी और तुकबंदियों की ज़रूरत थी जो अवाम के दिलों में घर कर जाये और उसे गा-बजाकर ज़्यादा आम किया जाये। इसलिए इन सबकी तलक़ीन व तबलीग़ का हलक़ा अवाम पर मुश्तमिल था——खसूसन दस्तकार और काश्तकार। इनके इस फ़ेल को अहले-शरीयत ने बदअत् से ही नहीं, बल्कि बदअत सअय्यासे ताबीर करके नफ़रत का इज़हार किया। फिर भी मज़हब की वह राहें ज़्यादा से ज़्यादा अवाम-पसन्द बन गई।" (उ०प्र० के लोकगीत, पृष्ठ ४३०)

इस प्रकार जनता में अपना प्रचार करने के लिए उन लोगों को जनता की भाषा अर्थात् हिन्दी में, उन्हींके प्रिय छन्दों और संगीत में कविताएं और गीत लिखने पड़े, जो उनमें लोकप्रिय हुए और चल निकले। इन दरवेशों और औलियाओं का लक्ष्य साधारण जनता में प्रचार करना था, मुसल-

---

नज़रियात—दृष्टिकोण
तलक़ीन—शिक्षा देना
बदअत—नई रस्म निकालना
सय्या—बुरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मानों के उच्च वर्ग में नहीं। यदि उच्च वर्ग के कुछ मुस्लमान उनके शिष्य या भक्त हो गये तो उनकी विद्वता, सात्विक जीवन और चमत्कारों के कारण। उन्होंने जो गीत बनाये वे उनके लिए नहीं, जनसाधारण के लिए थे। इसीलिए वे निम्न वर्ग के मुसलमानों के हृदयों में घर कर गये और उनमें आज भी प्रचारित हैं। श्री फ़ारुक़ी बतलाते हैं——

"बाज़ रसूमात और आमाल (मज़हबी न होने के बावजूद) इस क़दर मज़हबियत का जुज़ बन गए हैं कि असल मज़हबी आमाल इनके सामने मांद पड़ गए हैं। खुदाई रात हो, या रतजगा, मस्जिद की सलामी हो या ताक़-भराई, लावनी हो या क़व्वाली, क़ाल हो या रंग-शरीफ़ या इसी क़िस्म की कोई दूसरी चीज हो इन सबमें (गीतों में) ज्यादातर मक़बूलियत क़व्वाली को हासिल है——

अल्लाह मियाँ तेरा दरवाजा देखन जाऊँगी
अल्लाह मियाँ के बाग़ में फुलवा बीनन जाऊँगी।
चन्दन जड़े हैं किवाड़ कैसे उन्हें खुलवाऊँगी
चन्दा सूरज का कलस है, तारों की झालर
मुंदी जायें अँखियाँ किधर देख पाऊँगी।
अल्लाह मियाँ तेरी बन्दी कब से खड़ी है द्वार
खुलवा दे किवड़िया देख लूँ तेरा प्यार
लगन लगाऊँगी अल्लाह मियां तेरा दरबार देखन आऊँगी।"

(उ० प्र० के लोकगीत, पृष्ठ ३८१-३८२)

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि निम्नवर्ग के मुसलमानों में हिन्दी के गीत कितने प्रचलित हैं। उत्तर भारत में भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में ये लोकगीत हिन्दी की भिन्न-भिन्न स्थानीय बोलियों में हैं। इनके इतने लोकप्रिय होने के अनेक कारण हो सकते हैं, किन्तु मुख्य कारण यह है कि वे उस भाषा में हैं जो वे बोलते हैं और वह भाषा हिन्दी है। वे धर्म से मुसलमान होते हुए भी मूलतः भारत के निवासी हैं और स्थानीय भाषा उनकी स्वाभाविक भाषा ही नहीं, उन्हें उससे लगाव भी है। बाहर से आये मुसलमानों की तरह उनमें बाहर की भाषाओं के प्रति मोह नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुस्लिम अवाम की भाषा–हिन्दी

स्पष्ट है कि गांवों में रहनेवाले देहाती मुसलमानों की भाषा यही हिन्दी है। नगरों में रहने वाले निम्नवर्ग के मुसलमानों की बोली भी स्थानीय हिन्दी ही है। किन्तु उच्च वर्ग के मुसलमानों के सम्पर्क और प्रभाव से उनकी भाषा में फ़ारसी के भी कुछ शब्द प्रयोग में आते हैं।

मुसलमानों का यह वर्ग जो मूलतः भारतीय है और जिसका केवल धर्म परिवर्तन हुआ, वही यहाँ अधिक संख्या में हैं और वह हिन्दी की स्थानीय बोली बोलता है। संस्कारों तथा अन्य अवसरों पर हिन्दी के गीत गाता है।

गांवों के और निम्नवर्ग के मुसलमानों में ये ही गीत गाये जाते हैं, किन्तु शहरों में रहने वाले सुशिक्षित उच्च वर्ग के हिन्दू और मुसलमान दोनों ही में ऐसे व्यक्ति हो सकते हैं जोकि देहात और निम्नवर्ग से कटे और दूर रहने के कारण इस कथन को एक "हिन्दीवाले" का कथन समझकर इस पर शंका करें। इसलिए यहाँ हम जनाव अज़हर अली फ़ारुक़ी का उद्धरण देते हैं जिससे प्रमाणित होता है कि अमीर खुसरो के समय से अर्थात् तेरहवीं शती से ही (मुसलमानों के आने के बाद से ही) "आम मुसलमानों में हिन्दी गीत गाये जाने लगे थे जो अब उनके जीवन के अंग बन गए हैं।" श्री फ़ारुक़ी इसका श्रेय अमीर खुसरो को देते हैं जो हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य थे और जो जनता म अपने धर्म का प्रचार करने के लिए हिन्दी में गीत बनवाना और गवाना आवश्यक समझते थे। शायद इसीलिए खुसरो ने फ़ारसी, अरबी के विद्वान होते हुए और उन भाषाओं में प्रचुर ग्रंथ रचना करने के बाद भी जनता में लोकप्रिय होने के लिए हिन्दी में कुछ गीत आदि लिखना आवश्यक समझा हो। जो भी हो, फ़ारुक़ी साहब का मत है––

"आम मुसलमानों में हिन्दुस्तान की देसी बोलियों में गीत बनाने और गाए जाने का जज्बा हज़रत अमीर खुसरो के गीतों की देन समझना चाहिए। खुदाई रात, रतजगा, चादर, गागर वगैरा के गीत इन्हींके गीतों का तक़लीदी रुझान है।"

"घी के दिया जलाओ ननदी हमरे घर आये मुहम्मद बनरा, घुंघटा में आग लगाइ देतेऊँ, जैसे बोल ही तो हैं जिन्होंने अवाम से इस किस्म के बोल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

निकलवाए—मेरे अंगना में आये मुहम्मद, आंगन मोरे आइ जाओ अल्ला मियाँ, कासे उठाऊँ अल्ला-अल्ला तेरी महजित।"

यहाँ इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि इन गीतों की लोकप्रियता इनकी जनभाषा होने के कारण ही न थी, वरन् इस कारण भी थी कि उनमें यहाँ की संस्कृति और रीति-रिवाजों का आधार लिया गया था जिसे धर्म परिवर्तित मुसलमान जानते, समझते और पसन्द करते थे। अरब, तुर्की या ईरान में घी के दिए नहीं जलाये जाते, न वहाँ चंदन के किवाड़ की कल्पना की जा सकती है। ये गीत धर्म परिवर्तन करके बने बहुसंख्यक निम्नवर्गों के मुसलमानों में इसलिए लोकप्रिय हुए और आज भी उनमें प्रचारित हैं क्योंकि वे उनकी भाषा में हैं और उस संस्कृति पर आधारित हैं जो इस देश के मूल निवासी होने के कारण उनके मस्तिष्क और रक्त में घुली हुई हैं।

जैसा कि बताया जा चुका है, मुसलमानों में इन हिन्दी गीतों के चलन का प्रमाण अमीर खुसरो (जन्म १२५३ ई०) के समय से प्रामाणिक रूप में मिलता है। श्री सफ़दरआह खुसरो की जीवनी में (पृष्ठ २२, अनुवाद हिन्दी समिति द्वारा प्रकाशित) लिखते हैं, "इसके अतिरिक्त अमीर खुसरो की रचना हिन्दी कविताओं की प्रथाओं के अनुसार है। इसमें प्रेम नारी की तरफ़ से होता है। इसके रीति रिवाज हिन्दुस्तानी हैं। किन्तु इनकी भाषा अधिकतर वह हिन्दी है जो यहाँ के मुसलमान बोलते थे। हाँ, उसके भाव में मुस्लिम संस्कृति की एक झलक विद्यमान है। सावन में नवविवाहिता दुल्हन अपने माता-पिता के घर जाती है। यह रीति यहाँके हिन्दू और मुसलमानों में आम है। अमीर खुसरो सावन के 'मल्हार गीत' के ढंग पर एक मुसलमान दुल्हन की ज़बानी प्रस्तुत करते हैं—

अम्मा मेरे बावा को भेजो जी, कि सावन आया,
बेटी तेरी बावा तो बूढ़ा री, कि सावन आया,
अम्मा मेरे भैया को भेजो री—कि सावन आया,
बेटी तेरा भैया तो वाला री—कि सावन आया,
अम्मा मेरे मामू को भेजो री—कि सावन आया,
बेटी तेरा मामू तो वांका री—कि सावन आया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कितना हिन्दुस्तानी भाव है? किन्तु इस भाव को व्यक्त करने का माध्यम एक मुसलमान दुल्हन है। गीत में अम्मां, वावा, मामूं, बेटी आदि शब्द हिन्दी बोलनेवाले भारतीय मुसलमानों के घरानों में बोले जाते हैं। साथ ही साथ गीत का रंग भी मुसलमानी है।"

वह आगे लिखते हैं—"वच्चा होने से विवाह होने तक तथा विवाह से प्राणान्त तक मुसलमानों के यहां भी गीत एवं रीतियां हैं जिनकी अपनी कुछ विशेषताएं हैं। हिन्दी साहित्य ने उनका विलकुल अंत नहीं किया है। यह संस्कृति भी भारतीय संस्कृति का एक अंग है।"

हम इस कथन से पूर्णतया सहमत हैं। अमीर खुसरो ने उस काल की टकसाली हिन्दी यानी व्रजभाषा में भी कविता की। जब वे शोकाकुल होकर अपने परमप्रिय और श्रद्धेय गुरु हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया की क़ब्र पर पहुँचे तो उस शोकाकुल अवस्था में उन्होंने फ़ारसी में कुछ न कहकर अपनी मातृभाषा में यह प्रसिद्ध दोहा कहा था—

गोरी सोवै सेज पर डारे मुख पर केस
चल खुसरो घर आपने, रैन भई चहुँ देस।

यह दोहा इतना महत्वपूर्ण माना जाता है कि हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया के उर्स का उत्सव इसी दोहे से आज भी आरंभ किया जाता है।

खुसरो के समय से आज तक मुसलमान अवाम (जनता) के लिए ऐसी हिन्दी में ऐसे गीतों का लिखना जारी है। सैकड़ों अज्ञात मुसलमान कवि आज भी ऐसी ही हिन्दी में गीत वनाते हैं जो मुसलमान जनता द्वारा गाये जाते हैं। १९७२ में प्रकाशित सीतापुर के डॉ० मौलाना सैयद शाहिद मुमताज़ हुसेन की पुस्तक 'शाहेमदीना' के कुछ गीत (जिन्हें वे हिन्दी गीत कहते हैं) तथा कुछ सामान्य तुकवन्दी करनेवाले क़व्वालों के गीतों के उदाहरण भी दिये जायगें जिससे मालूम होगा कि मुसलमान जनता की इस आवश्यकता की पूर्ति हिन्दी गीत लिखकर आज भी उनके हितैषी किस प्रकार कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मोहर्रम के अवसर पर शिया शोकगीत, जिन्हें मर्सिया कहते हैं, पढ़ते हैं। सुन्नी भी उस अवसर पर शोक गीत पढ़ते हैं जिन्हें 'दहा' कहा जाता है।

मुहर्रम में सुन्नी स्त्रियां इसे गाकर शोकपूर्ण स्वर में पढ़ती हैं। इसलिए 'दहा' 'रोये' जाते हैं, गाये नहीं जाते। एक मित्र ने संडीला (जिला हरदोई) की स्त्रियों को यह दहा पढ़ते हुए सुना और लिखकर मुझे दिया:—

उई जुन्हाई सवा सांझ मां
सुकवा उए हैं आधी रात मां
तौने घरी हसन पैदा भए।
दादी उनकी बुलाएँ लागी बाम्हना।
बाम्हना भैया, बैठउ आँगन मां,
देखउ हसन सिर का लिखा।
एक तौ लिखा है अल्ला मक्का मदीना
दूजे लिखा हैं अल्ला करवला।
करवले का ठंडा जो पानी
पानीं पियावें बीबी फातमा।

(सुकवा=शुक्र तारा, पियावें=पिलावें)

रतजगे में गाए जानेवाले गीतों के कुछ नमूने देखिए। [यह अक़ीक़े (मूंडन) में भी गाए जाते हैं (उ० प्र० के लोकगीत से उद्धृत)

(१)

मलिनिया मैंका लाई बेला कली
कली पुकारैं अली अली
जेही कली पंचपीरन को चढ़य्यो
जेही कली गाजी पीरन को चढ़य्यो
जेही कली गाजी मियां को चढ़य्यो
कली पुकारैं अली अली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(२)

एही आवन की जून मोरे अल्लाह मियां
जो मैं जनतिऊं अल्लाह मेरे अइहैं
रखितेउँ गलियां बटोर।
जो मैं जनतिउँ अल्ला मोरे अइहैं
रखितेउँ अंगना बटोर
जो मैं जनतिउँ अल्ला मोरे अइहैं
रखितेउँ चौकी बिछाइ
जो मैं जनतिउँ अल्ला मोरे अइहैं
रखितेउँ थाली सजाइ
जो मैं जनितेउँ अल्ला मोरे अइहैं
रखतेउ जेहर भराइ
यह आवन की जून मोरे अल्ला मियाँ।

(बहोर=बुहार कर, जेहर=झज्झर)

अब विवाह के अवसर पर गाया जानेवाला गीत देखिए—

आया री लाड़ो तेरा बन्ना बन आया
मुँह मकना सिर पै विराजे सेहरा
अच्छी बन्नो घर आया अल्लाह नबी का साया
आया री लाड़ो तेरा बन्ना बन आया
बग्घीवाला बन्ना, सेहरेवाला बन्ना
चन्दा सा मुखड़ा हरियाला बन्ना
आया री लाड़ो तेरा बन्ना बन आया।

अब कुछ अन्य अवसरों पर गाये जाने वाले गीत देखिए जो सामान्य मुसलमानों में गाये जाते हैं—

(१)

जो मैं जन्तिउं बिछुरत हैं सैंया घूंघट मैं आग लगाइ देतिउँ
मोहे बिरहा अगन मां फूंक दियौ तोहि जियरा खोलि दिखाइ देतिउँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मोरी चुरियन की लाज पिया रखिऔ, ये पहिर लिऔ अब उतरिबे ना
तोरे हाथ है लाज सुहाग मेरौ, पायल की छन्-छन् सुनाइ देतिउँ।
अल्लाह की कसम, मौला की कसम, मेराज की रात में जो होतेउँ
तेरी आंख जो लड़ती, वहाँ मैं अपनी भी जान लड़ाइ देतेऊँ।

(२)

घी के दियना वारौ ननदिया, हमरे घर मुहम्मद आये
चंदा सा मुखड़ा, नूर सा चेहरा दमकै, कुतुबतारा माथे पै चमकै।
अब ना सहिवैं गम औ सदमे शुभ घड़ी यह रहमत आयी रे
हमरे घर मुहम्मद आये री, घी के दियना वारौ ननदिया।
दिल से पढ़िवे इनका कलमा, नाव न डुबिहै रहते दुनियां
पार उतरिहै जग की नैया, केवट सबके अहमद आये रे
हमरे घर मुहम्मद आये रे, घी के दियना वारौ ननदिया।

(३)

निर्गुन की मोरी नैया,
खे के लगावैं बेड़ा पार।
भंवर अहर जल उथल पुथल
मोहे नाहीं परवाह लंगर खातुन जन्नती
सीधी उलटी राह है हसन हुसैंन डांड़िये दोनों पतवार
नैया लगावैं पार।
हैदर साह है गवाह गुन मानी खड़े नबी जी
मालिक तो अल्लाह।
बिसमिल्लाह मुजरिहा पढ़िकै होइ बैठो असवार
सजना सबद अल्लाह निकले
टूट न पावै तार, नैया लगावै पार।

ये तो कुछ नमूने पुराने गीतों की भाषा के हैं। पुराने गीतों में (जो मुसलमान महिलाएँ गाती हैं) कुछ ऐसे भी हैं जिनमें ग्रामीण भावना तो है

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

किन्तु उनमें मुसलमानी रंग नहीं है। वे हिन्दू और मुसलमानों द्वारा समान रूप से गाये जाते हैं। उनका एक पुराना नमूना यह है––

आंगन लीपौ, चौक पुराओ
के सुभ घड़ी लगन धराओ रे
क्या रे करें सब कोई रे।
क्या रे करें तेरे पंडित जोसी
करम लिखा सो होई रे
क्या रे करे तेरे लखियारे बावा
क्या रे करे सब कोई रे

या ऐसा ही दूसरा पुराना गीत––

अरे हो मेरे वाबुल मढ़हा छाऔ
काहे को ब्याही विदेस रे तुम वाबुल मेरे ?
हम तो वाबुल तोरे बेले की कलियां
घर-घर माँगी जायँ।
हम तो बाबुल तेरे खूँटे की गैया
जिधर हाँकौ, हँकि जायँ।
हम तौ वाबुल तेरे बागों की कोइलियाँ
कुहुक-कुहुक रहि जायँ।
हम तौ रे वाबुल तेरे आंगन की चिरैयाँ
चरें औ चुगें उड़ि जाय,
ताख भरी मैंने गुड़ियाँ जो छोड़ीं
छोड़ा सहेलियों का साथ। काहे को व्याही परदेस रे।

अव मुसलमान जनता में प्रचलित देसी भाषाओं की कव्वालियों का एक नमूना लीजिए। यह कव्वाली लखनऊ के मछली मोहाल मोहल्ले में इसी वर्ष फरवरी में एक महफिल में गायी गयी थी :—

दिलाय देओ ललना ओ अजमेरी ख्वाजा
सास ससुर सब अभागन कहत हैं
दिलाय देओ ललना ओ अजमेरी ख्वाजा
बुलाय लेओ दर में ओ अजमेरी ख्वाजा।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आज भी नई-नई क़व्वालियां मुसलमान आज की विचित्र चलती भाषा में तुकवन्दी करने वाले अपने भाइयों के लिए लिख रहे हैं। देखिए यह नई धार्मिक कव्वाली :—

गिरा सिंगल, वजी सीटी, अव इंजन चलने वाला है
लगी उम्मद की बोगी औ डराइवर कमलीवाला है।
मोमिन की रेल है, अल्ला से मेल है
चढ़ने का पास ले लो वरना गाड़ी फेल है।

तुकबन्दी करनेवाले ही नहीं, आज के उच्च वर्ग के मुसलमान कवि भी यह जानते हैं कि आम मुसलमानों में देशी बोलियों या हिन्दी ही के गीत चलते हैं। यह अनुभव करके कि उनकी आवश्यकता की पूर्ति के लिए हिन्दी भाषा में उनके लिए मजहबी गीत लिखे जायँ, सन् १९७२ में सीतापुर के डा० मौलाना सैयद शाहिद हुसैन ने "शाहे मदीना" के नाम से हज़रत मोहम्मद साहब पर अपनी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित किया। उसमें फ़ारसी लिपि में पंद्रह-सोलह गीत भी हैं जिन्हें वे हिन्दी में लिखा बतलाते हैं। इससे स्पष्ट है कि डाक्टर साहब के समान उच्च वर्ग के मुसलमान विद्वान भी यह जानते हैं कि मामूली मुसलमान जनता किस भाषा के गीत गाती है। स्पष्टतः यह मुसलमान जनता के सिवाय और किसीके लिए लिखे ही नहीं जा सकते।

इससे यह स्पष्ट होता है कि अमीर खुसरो के समय से मुसलमान जनता में हिन्दी में धार्मिक और लौकिक गीत गाने की जो परम्परा थी वह सात सदियों के वाद आज भी कायम है।

अव डाक्टर साहव के गीत देखिए, कितने सुन्दर हैं।

हजरत मोहम्मद साहब के जन्म संबंधी गीत

आमना बीबी के घर पैदा भये नन्दलाल।
तिथी द्वादसी तीसर मासा, दिवस दोशम्वा पूरन मासा
सत सवारे जग मां वासा, आमुल फेल का साल। आमना बीबी......
दाई हलीमा के गोद खिलय्या, हाशिम वंस नबी कहवय्या,
नाम मोहम्मद जग माँ होवय्या, पुत्र अब्दुल्ला के लाल।
आमना बीबी के घर.........

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चन्द्र बदन मुख माह सितारा, जस चमकै आकास का तारा
अइस भयौ जग मां उजियारा, देख के लुटै जान और माल।
आमना बीबी के घर......

वतहा के वासी भये सांवरिया, नस लेके आकास नजरिया
वरसै कंचन नीर वदरिया, भये मुनि संत गोपाल।
आमना बीबी के घर......

उनके एक दूसरे गीत का अन्त में इस प्रकार है—

कहे मियां शाहिद संत विचारे, तीर बुलाओ राजदुलारे
चरनन लागों आन तिहारे।

ये हिन्दी गीत मुसलमान अवाम (जनता) में चलते हैं और लोकप्रिय हैं। उनका बोलचाल, दैनिक कामकाज इसी भाषा में होता है। यह भाषा वही है जो उनके हिन्दू पड़ोसी और गाँव के लोग बोलते हैं।

हिन्दी गीत मुसलमानों में प्रचलित हैं किन्तु जिन्हें इसमें संदेह है वे स्वयं गांवों में जाकर अपनी शंका मिटा सकते हैं। यदि उन्हें इसका समय न हो तो वे दो और वातों पर विचार करें। सिनेमा में जो फ़िल्म दिखाये जाते हैं वे जीवन का बहुत कुछ चित्रण करते हैं। 'गमन' नामक फिल्म में मुसलमानों के जीवन का चित्रण किया गया है। उसमें मुस्लिम विवाह पर यह गीत गाया गया है :

वड़ी धूम गजर से आया रे नौसा अमीरों का
सेहरा जो तेरा लाखों का, कलगी हजारों की
वाँधों दूल्हेराम तेरी चाल अमीरों की।
जामा जो तेरा लाख का, जोड़ा हजारों का
पहनो-पहनो दूल्हेराम, नौसा रे, तेरी चाल अमीरों की।

अवश्य ही भाषा और भाव का फ़िल्मीकरण स्पष्ट है किन्तु मूलतः सरल हिन्दी में है।

दूसरी बात यह कि अजमेर में हजरत ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती का उर्स हर साल कई दिन चलता है। उसमें रात में कव्वालियां ही होती हैं। हिन्दी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की पुरानी कव्वालियां तो गायी ही जाती हैं, किन्तु एक रात कानपुर के प्रसिद्ध कव्वाल श्री शंकर और शंभू की कव्वालियों के लिए आरक्षित है। श्री शंकर शंभु कई कव्वालियाँ प्रति वर्ष गाते हैं। इनकी गायी जाने वाली एक कव्वाली "काहे दासी को ख्वाज़ा भुलाइ दीन्हेउ" अत्यन्त लोकप्रिय है। वे प्रति वर्ष अजमेर के उर्स में सम्मिलित होकर अपनी लोकप्रिय हिन्दी कव्वालियों को सुनाकर मुस्लिम जनता के धार्मिक मनोभाव को तृप्त करते हैं। इससे प्रमाणित होता है कि मुसलमान जनता में हिन्दी कितनी प्रचलित है। श्री शंकर शंभु द्वारा गायी जाने वाली कव्वाली, जो शारिक़ इरयानी की रची हुई है, इस प्रकार है :

काहे दासी को ख़्वाजा भुलाय दीन्हों ।। काहे...... ।।

उनकी अखियां हैं कैसी कटीली बनीं,
अलबेली बनी हैं रसीली बनीं ।।
उनकी सखियां हैं कैसी रंगीली बनीं,
सबके नैना मां जादू जगाय दीन्हों ।। काहे...... ।।

प्रेम की आग में फूंक डाला है तन,
राख ही राख है, अब ये तन, हो कि मन ।।
क्या करूं फिर भी लागी है जैसे लगन,
मोहे बिरहा अगिन मां जलाय दीन्हों ।। काहे...... ।।

दाद जब तक न दरबार से पाऊँगी,
ख़्वाजा, ख़्वाजा पुकारे चली जाऊँगी ।।
जान दे दूंगी अपनी ना बाज़ आऊँगी,
काहे मोको नज़र से गिराय दीन्हों ।। काहे......।।

फ़ारसी-बहुल उर्दू मुसलमान उच्चवर्ग की भाषा

ऊपर मुसलमान अवाम अर्थात् बहुसंख्यक निम्न वर्ग के मुसलमानों की भाषा के सम्बन्ध में लिखा गया है। वह हिन्दी है। अब उत्तर प्रदेश के मुसलमान आभिजात्य और उच्चवर्ग की, जिसे अंग्रेजी में ऐलीट (Elite) कहते हैं, भाषा पर विचार किया जाय।

जैसा कि बताया जा चुका है निम्न वर्ग मुसलमानों में बहुत अधिक संख्या

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

(शायद ६०-६५ प्रतिशत) उन लोगों की है जो मूलत: इसी देश के थे और किसी कारण से मुसलमान हो गए । उनके रक्त और मस्तिष्क में भारतीय भाषा और संस्कृति के संस्कार किसी न किसी रूप में थोड़े या वहुत वर्तमान हैं । इसके विपरीत उनके आभिजात्य वर्ग में अधिकांश वे लोग हैं जिनके पूर्व-पुरुष मुस्लिम शासन काल में भारत के वाहर के देशों, जैसे अरव, ईरान, बुखारा, वल्ख़, अफ़गानिस्तान से आए । जिस प्रकार आज कितने ही पढ़े लिखे भारतवासी युवक अपनी आर्थिक हालत सुधारने के लिए अमरीका, कनाडा, इंगलैंड, जर्मनी, खाड़ी के देशों, लीविया, केनिया आदि अफ्रीकी देशों में जाते हैं, उसी प्रकार ये लोग मुस्लिम शासन काल में अरब और मध्यपूर्व या मध्य एशिया के देशों से अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए यहाँ आये थे । वे उस समय की राजभाषा फ़ारसी में निपुण होते या मुस्लिम धर्मशास्त्रों के विद्वान (आलिम और फ़ाजिल) होते । यहाँके मुस्लिम शासकों से उनका रागात्मक संबंध रहता । वे उनकी क़द्र करते और उन्हें उच्च पद दे देते । धीरे-धीरे उस युग में इन विदेशी लोगों की संख्या वढ़ गई । वे यहीं वस गये । वे यहां उच्च पदों पर रखे गये और शासन तंत्र में उनकी वड़ी संख्या हो गई । वे शासकवर्ग बन गये । उनमें वहुत से ज़मींदार हो गए । इस कारण वे उच्च वर्ग या एलीट समझे जाने लगे । आज भी ये ही लोग मुसलमानों में उच्च वर्ग के समझे जाते हैं । भारत में बस जाने पर भी वे यह नहीं भूले कि वास्तव में वे अन्य देशों से आये हैं या अरव अथवा ईरान आदि के उच्च वंशों के हैं । इस याद को बनाए रखने के लिए वे अपने नामों के पीछे कुरेशी, हाशमी, काज़मी, रिज़वी, बुखारी, तातारी, शीराज़ी, इस्फ़हानी, तैमूर, सिद्दीक़ी, अब्बासी आदि शब्दों को लगाते हैं। उनमें अपने मूल देशों या वंशों का गर्व स्वाभाविक है । इसी कारण उन पर यहाँकी संस्कृति का विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । आज भी उनका उन देशों से रागात्सक संवंध हैं और वे उसे बनाये रखना चाहते हैं । अरबी को तो वे धार्मिक कारणों से पढ़ते या आदर करते हैं । किंतु फ़ारसी को अधिक पढ़ते हैं, क्योंकि यह वह महत्वपूर्ण कड़ी है जो उन्हें मध्यपूर्व से जोड़े रहती है । इसीलिए वे फ़ारसी लिपि से इतने जुड़े हुए हैं । वे उर्दू को देवनागरी में लिखने के इसीलिए विरोधी हैं कि यदि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वे देवनागरी में उर्दू लिखने लगेगें तो फ़ारसी लिपि भूल जाएंगें, और तब फ़ारसी पढ़ना कठिन हो जाएगा और मध्यपूर्व से जोड़नेवाली कड़ी न रहने से उनकी विशिष्ट संस्कृति कमजोर हो जाएगी। ऐसा नहीं है कि इनमें सभी लोग इसी मानसिकता के हैं। अपवाद भी मिलते हैं। जैसे, सर सैयद अमीर अली बड़े विद्वान थे। वे भी आभिजात्य वर्ग के थे, किन्तु अपने को बिलग्रामी लिखते थे। हजरत नूह नारा (जिला इलाहाबाद) के थे। वे अपने को नूह नारवी लिखते थे। आगरा के प्रसिद्ध कवि सीमाब अपने को सीमाब अकबरा-वादी लिखते थे। प्रसिद्ध कवि अकबर इलाहाबाद के थे। वे अपने को अकबर इलाहाबादी कहते थे। दूसरे प्रसिद्ध कवि अपने को जिगर मुरादाबादी बत-लाते थे। उन्हें अपने को भारतीय कहने में संकोच न था, बल्कि गर्व का अनुभव होता था। किन्तु ये लोग इस वर्ग में अपवाद हैं। इस वर्ग के लोगों की मानसिकता वही है जो ऊपर बतायी गई है। उनका रागात्मक संबंध और उनके आदर्श मध्य एशिया के हैं। यह वर्ग भारत में 'नलिनी दलगत् जलवत्' (कमल के पत्ते पर पानी की बूंद की तरह) है। कमल के पत्ते पर पानी की बूंद अलग बनी रहती है। वह उसमें जज़्ब नहीं होती। कई सदियों से यहाँ रहते हुए भी उन्होंने अपने को भारतीय संस्कृति और भाषा से दूर रखा। वे भारत "में" हैं पर ठीक तरह से भारत "के" नहीं हो पाये। इस वर्ग की इस विचित्र मानसिकता (ज़ेहनियत) पर खेद प्रकट करते हुए मौलाना हाली ने लिखा था--

"कौन नहीं जानता कि मुसलमान बावजूदेकि एक हज़ार बरस से हिन्दोस्तान में आबाद हैं मगर इस तवील मुद्दत में उन्होंने चंद मुस्तसनीयात को छोड़कर कभी संस्कृत या ब्रज भाषा की तरफ़ बावजूद सख्त ज़रूरत के आंख उठाकर नहीं देखा। जिस संस्कृत को यूरोप के मुहक़्क़िक ज्यादा वसीअ और ज़्यादा बाकयदा बताते हैं और जिसकी तहक़ीकात में जिन्दगी बसर कर देते हैं, मुसलमानों ने कभी क़ाबिल इल्तफ़ात नहीं समझा।"

जब वे भारतीय साहित्य से इतना परहेज करते हैं तब उनसे प्रभावित होना दूर की बात है बल्कि उससे उतने ही अनजान हैं जितने हम चीन और जापान के साहित्य से हैं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम जानते हैं कि अनेक विषय और ऊँचे विचार सरल या बोलचाल की भाषा में न लिख जा सकते हैं और न समझाए जा सकते हैं। उनके लिए भाषा सरल नहीं हो सकती। अल्लामा इक़बाल के उच्च दार्शनिक विचार बोलचाल की उर्दू में नहीं समझाए जा सकते। इसलिए उनका वैसी कठिन भाषा लिखना सर्वथा उचित था। किन्तु वे किसके पढ़ने के लिए लिखे गए थे? क्या सामान्य या आम व्यक्तियों के लिए? नहीं वे विद्वानों और उच्च शिक्षित व्यक्तियों के लिए हैं। सभी भाषाओं में ऐसे विषय ऐसी कठिन भाषा ही में लिखे जाते हैं जो बोलचाल की भाषा नहीं होती। उनके विचार व्यक्त (अदा) करने के लिए बोलचाल की भाषा में शब्द ही नहीं होते। अंग्रेजी में जुरिस्प्रुडेंस या उच्च भौतिकी (फ़िज़िक्स) की पुस्तकों की भाषा सामान्य अंग्रेज नहीं समझ सकता। न वे उसके लिए लिखी गई हैं। उनके लिखने के लिए शब्द क्लासिकल भाषाओं से लिए जाते हैं। अंग्रेजी लिखने वाले ये शब्द इन्हें ग्रीक या लैटिन भाषाओं से लेते हैं। वे दोनों इंगलैंड के लिए विदेशी भाषाएं हैं। किन्तु इंगलैण्ड में अपनी कोई क्लासिक भाषा है ही नहीं और वे निकटतम देशों की क्लासिक भाषा पर निर्भर रहने को मजबूर हैं। हमारे लिए––हिन्दोस्तानियों या भारतवासियों के लिए हमारी क्लासिक भाषा संस्कृत है। अतएव हम जब जटिल विचारों को व्यक्त करने के लिए बोलचाल की भाषा में शब्द नहीं पाते––चाहे बंगला लिखते हों, मराठी या गुजराती या अन्य भारतीय भाषा, तब संस्कृत का सहारा लेते हैं और उनसे शब्द लेकर अपने भाव या विषय व्यक्त करते हैं। किन्तु यह लेखन जो क्लासिकल के सहारे लिखा जाता है, 'क्लासेज़' (सुशिक्षित उच्च वर्ग) के लिए होता है––'मासेज़' (जन साधारण) के लिए नहीं। उर्दूवालों के सामने भी यही समस्या है। जब वे उच्च विचार व्यक्त करना चाहते हैं तो एक क्लासिकल भाषा फ़ारसी का सहारा लेते हैं। फ़ारसी पहले भी विदेशी भाषा थी, और आज भी विदेशी भाषा है। इस देश में संसार की सबसे समृद्ध क्लासिक भाषा संस्कृत को छोड़कर एक विदेशी क्लासिक का सहारा क्यों लें? यह हमारे लिए राष्ट्रीय प्रतिष्ठा का प्रश्न है। जब कोई हिन्दोस्तानी एक विदेशी क्लासिक भाषा का सहारा लेता है तब मानो वह यह विज्ञापित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करता है कि भाषा के मामले में भारत इतना दरिद्र है कि उच्च विचार व्यक्त करने के लिए उसे एक विदेशी क्लासिक का सहारा लेना पड़ रहा है।

किन्तु ,क्लासेज़ के लिए यदि उर्दूवाले फ़ारसी पर निर्भर रहना चाहते हैं तो उसे ठीक न समझते हुए भी हम उसका विरोध नहीं करेंगे। यह उनके विवेक और उनकी राष्ट्रीय भावना का प्रश्न है। किन्तु यह क्लासिक पर निर्भरता ऐलीट या उच्च वर्ग के लिए लेखन में ही हो। राजभाषा क्लासेज़ के लिए नहीं, 'मासेज़' (जन साधारण) के लिए होती है। उसमें जिस फ़ारसीवहुल भाषा को वे उर्दू कहते हैं वह किसी तरह उत्तर प्रदेश की जनता के गले नहीं उतर सकती। हमें उर्दू से कोई विरोध नहीं। जो मुसल-मान आभिजात्य वर्ग (ऐलीट) उससे चिपका रहना चाहता है वह उसके लिए स्वतन्त्र है। किन्तु हमें उसका राजभाषा के रूप में अपने ऊपर थोपे जाने का सख्त विरोध है। इसी प्रकार देवनागरी ऐसी वैज्ञानिक दृष्टि से प्रायः पूर्ण और दोष रहित लिपि के स्थान में हमें फ़ारसी लिपि भी स्वी-कार नहीं जिसमें हमारे देश की भाषाओं के शब्द शुद्ध रूप से नहीं लिखे जा सकते।

उनकी इस मानसिकता का एक कारण और है। वे जानते हैं और इसे न भूलना उनके लिए स्वाभाविक है कि उनके पूर्वपुरुषों ने प्रायः एक हजार वर्ष यहां राज किया। उनके शासन के सुन्दर और शानदार स्मारक सारे देश में फैले हुए हैं और वे उन्हें अपने गौरवशाली अतीत की बार-बार याद दिलाते रहते हैं। वे यह भी नहीं भूल सकते कि हिन्दू बहुत दिनों उनकी प्रजा थे। प्रजा की संस्कृति या साहित्य के बारे में सामान्य रूप से शासक वर्ग में आदर की भावना नहीं होती। उनके सांस्कृतिक आदर्श मध्यपूर्व एशिया के हैं जिन्हें वे छोड़ना नहीं चाहते। जब भारतीय संस्कृति न तो उन्हें प्रिय है और न उसके लिए आदर ही है तब वे उसे जानने का कष्ट क्यों उठावें ? ऐसी दशा में मौलाना हाली की आलोचना अरण्यरोदन सिद्ध हुई। उसका कोई प्रभाव नहीं हुआ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विदेशी मूल के हमारे आभिजात्य वर्ग के मुसलमान मित्रों के उर्दू के गहरे मोह का एक सबल मनोवैज्ञानिक कारण भी हो सकता है। वह यह कि उनकी "रेशियल मैमोरी" के अवचेतन (सबकांशस) में यह बात गहरी पैठी हुई हो कि उर्दू उनके विदेशी पूर्वजों की भारत-विजय के परिणामस्वरूप बनी और इसलिए वह उन्हें अपने पूर्वजों की गौरवपूर्ण भारत-विजय का स्मारक मालूम होती हो। स्पष्ट है कि यदि वे विदेशी आक्रमणकारी भारत पर आक्रमण न करते तो न लश्करों की ऐसी छाँवनियाँ ही बनतीं जिनमें मध्यपूर्व और मध्य एशिया के अनेक देशों के विविध भाषा-भाषी जमा होते और न उर्दू ज़बान बनाने की नौबत आती। यदि उर्दू उस घटना से पैदा होने के कारण उसका स्मारक समझी जाती हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

देश की बदली स्थिति में शिक्षा में इतने आधुनिक विषय आ गए हैं जिनका पढ़ना इस युग में विश्व में अपनी स्थिति बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। अतएव अब फ़ारसी पढ़ने के लिए जितना समय और परिश्रम चाहिए वह आधुनिक युग में संभव नहीं है। अतएव वह फारसी जो एक डेढ़ शती पहले यहाँकी राजभाषा थी और जिसे मजबूरी से उच्च वर्ग के हिन्दू भी पढ़ते थे, अब इस देश में समाप्त प्राय है। हिन्दुओं की कौन कहे, कम मुसलमान भी अब फारसी पढ़ते हैं। इस देश के मध्ययुग का इतिहास संस्कृति और साहित्य जानने के लिए उसका ज्ञान बहुत आवश्यक है। मैंने बचपन में फ़ारसी पढ़ी थी पर अब बहुत कुछ भूल गया हूँ। कभी-कभी मुझे भी फ़ारसी के लेख या पुस्तकों को पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है। अब अच्छी फ़ारसी जाननेवाले विद्वानों का मिलना कठिन हो गया है। इसके दो ही उपाय हैं। एक तो फ़ारसी पढ़ने के लिए कुछ प्रतिभासंपन्न हिन्दू और मुसलमान विद्यार्थियों को अच्छी छात्रवृत्ति देना, दूसरे मध्यकाल में भारत में लिखी 'सेक्यूलर' फ़ारसी पुस्तकों तथा भारत या बाहर विदेशों में लिखी भारत संबंधी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद कराना। खुदाबख्श, रामपुर आदि पुस्तकालयों में कितनी ही बहुमूल्य और महत्वपूर्ण फ़ारसी पुस्तकों के संग्रह हैं। उनमें से महत्वपूर्ण पुस्तकों का योजनाबद्ध अनुवाद होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यह आवश्यक काम हिन्दी संस्थान, विहार राष्ट्रभाषा परिषद या अन्य ऐसी संस्थाएं करा सकती हैं। किन्तु वे ऐसे कल्पनाहीन लोगों के हाथों में हैं कि उनसे तव तक कोई आशा नहीं की जा सकती जव तक सरकार इसमें रुचि न ले। किन्तु सरकार देश की आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं में इतनी व्यस्त है कि इन सांस्कृतिक और साहित्यिक समस्याओं की ओर ध्यान देने की उसे फ़ुर्सत ही नहीं है। मैंने इसकी आवश्यकता समझकर शेरशाह सूरी के फ़ारसी जीवन चरित्र का हिन्दी अनुवाद कराया। संयोग से हिन्दी संस्थान में मेरे एक मित्र कुछ दिनों के लिए उसके डाइरेक्टर हो गये थे। उनकी कृपा से वह पुस्तक हिन्दी संस्थान में छप रही है। किन्तु ऐसे छुटपुट प्रयासों से कोई ठोस काम नहीं हो सकता। अस्तु।

उच्च वर्ग (एलीट) मुसलमानों का फ़ारसी प्रेम स्वाभाविक है। किन्तु अव उन्हें फारसी पढ़ने का अवकाश और अवसर नहीं है। उस फ़ारसी के मोह के दो परिणाम हुए। एक तो यह कि वे फारसी लिपि से चिपके हुए हैं, क्योंकि यदि फ़ारसी भाषा नहीं तो अपनी सांस्कृतिक तुष्टि के लिए और मध्यपूर्व से अपना संबंध वनाए रखने के लिए वे उसे अपनाये रखना आवश्यक समझते हैं। इसीलिए वे उर्दू की देवनागरी लिपि में लिखने का इतना विरोध करते हैं। दूसरे, वे फ़ारसी से सम्बन्ध वनाये रखने के लिए अपनी उर्दू में फ़ारसी के अधिकाधिक शव्दों का उपयोग करते हैं। कभी-कभी तो उनकी उर्दू में क्रिया और विभक्तियों को छोड़कर फ़ारसी शव्दों की इतनी वहुतायत रहती है कि वह फ़ारसी या फ़ारसीनुमा हो जाती है। लखनऊ में नासिख़ ने अपनी उर्दू में फ़ारसी शव्दों का इतना प्रचुर प्रयोग किया और दूसरे शायरों ने उनकी ऐसी नक़ल की कि सामान्य सुननेवालों को यह नहीं मालूम होता था कि वे फ़ारसी वोल रहे हैं या उर्दू। इसीको लक्ष्य कर सुरूर ने कहा था——

> वुलवुले शीराज़ को है रश्क नासिख़ से सुरुर
> इस्फ़हाँ जिसने किए हैं कूचहाए लखनऊ।

अर्थात् फ़ारसी शव्दों का इतना अधिक इस्तेमाल होने लगा था कि लखनऊ की गलियों में चलनेवालों को ऐसा मालूम होता था कि वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अवध की राजधानी में न होकर ईरान की राजधानी इस्फहान में पहुँच गया है ।

हिन्दी में दो-चार लोगों ने हिन्दी को संस्कृतप्रचुर करने का प्रयोग किया था । महाकवि हरिऔध ने अपना प्रसिद्ध काव्य ऐसी भाषा में लिखा——

रूपोद्यान प्रफुल्लप्राय कलिका पूर्णेन्दुविम्वानना
तन्वंगी कलहासिनी सुरसिका क्रीड़ाकला पुत्तली
शोभा वारिधि के अपूर्व मणि सी, लावण्य लीलामयी
श्री राधा मृदुभाषिणी सुरसिका, सुस्नेह की मूर्ति थीं

एक वार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी ऐसा प्रयोग किया था :

सुरम्यरूपे ! रसराशिरंजिते सुवर्णवर्णाभरणे कहाँ गयी ?
अलौकिकानन्दविधायनीमहा कवीन्द्रकान्ते कविते अहो ! कहाँ ?

द्विवेदीजी के छन्द में 'कहाँ गयी' और 'कहाँ' छोड़कर संस्कृत शब्दों की भरमार है । यही हरिऔधजी की कविता का हाल है । किन्तु हिन्दी वाले संस्कृतप्रेमियों ने भी इस शैली को स्वीकार नहीं किया । स्वयं हरिऔध जी और आचार्य द्विवेदीजी ने भी एक प्रयोग मात्र करके उसे निरर्थक समझ कर छोड़ दिया । यह प्रवृत्ति मर गयी ।

किन्तु उर्दू को फारसीमय वनाने की प्रवृत्ति को उर्दू साहित्यिकों ने जनता के हित में न रोक कर उसे अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया । अल्लामा इक़बाल की कविता के उच्चकोटि के होने में किसीको संदेह नहीं, किन्तु उसकी भाषा ऐसी है कि जो अच्छी अरबी और फारसी नहीं जानता वह उससे लाभ नहीं उठा सकता । अनेक शायरों ने उनका अनुकरण किया ।

कविता दो वर्गों के लिए लिखी जाती है। एक तो जनता (Masses) के लिए, दूसरी उच्च और सुशिक्षित वर्ग (Classes) के लिए । जो कवि जनता के लिए लिखता है वह भरसक उसकी भाषा या ऐसी भाषा में लिखता है जो उसकी भाषा के निकट हो । जो उच्च वर्ग के लिए लिखता है वह उस वर्ग की भाषा में लिखेगा । नजीर ने जनता के लिए लिखा । परिणाम यह हुआ कि उनकी कविता हिन्दू और मुसलमानों में समान रूप से प्रिय हुई और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जनता में उसका प्रचार हुआ। क्या अल्लामा इक़बाल की कविता जनता में चल सकती है ? हिन्दुओं की कौन कहे, कितने मुसलमान भी उसे नहीं समझ सकते। ऐसा कवि इस देश के शब्दों को इतना ग्रामीण या गँवारू समझता है कि अपनी साहित्यिक कृतियों में उनका कम-से-कम प्रयोग और फ़ारसी शब्दों का अधिक से अधिक प्रयोग करता है। वह अब फ़ारसी में तो नहीं लिख सकता किन्तु अपनी भाषा को जितना हो सके फ़ारसीनुमा बनाता है। यह तब तक जारी रहेगा जब तक मुसलमान उच्चवर्ग अपने को भारतीय साहित्य और संस्कृति से दूर रखेगा।

भाषाएँ जहाँ समाजों का पार्थक्य करती हैं वहाँ भाषा ही समाज़ों में एकता भी उत्पन्न कर सकती है। उच्चवर्ग का मुसलमान जब तक अपनी सांस्कृतिक और नस्ली भिन्नता बनाये रखकर अपनी अलग अस्मिता (आईडेण्टिटी) बनाये रखना चाहेगा, अर्थात् भारतीय समाज से पार्थक्य रखेगा तब तक वह उर्दू को फ़ारसीनुमा बनाये रखेगा। उत्तर प्रदेश के मुसलमानों के आभिजात्य वर्ग में यह भावना अभी भी प्रबल है। इसलिए निकट भविष्य में उर्दू के सरलीकरण की कोई आशा नहीं।

अतएव आज जो उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाने की माँग है वह न तो बहुसंख्यक समाज और इस देश के मूल निवासी मुसलमानों की है और न उनके हित में है। मुस्लिम जनता के लिए यह फ़ारसी-बहुल उर्दू उतनी ही जटिल और कठिन है जितनी उनके हिन्दू पड़ोसियों के लिये। यह माँग भारत में बसे उन मुट्ठी भर विदेशी-मूल के उच्च वर्ग के मुसलमान आभिजात्य वर्ग की है जिनके बारे में ऊपर लिखा जा चुका है। वे सामान्यतः नगरों में रहते और उच्च पदों पर हैं। वे प्रभावशाली हैं। उन्हें अरबी, फ़ारसी के विद्वान उलमाओं का भी समर्थन प्राप्त है और उलमाओं का प्रभाव अशिक्षित मुसलमान जनता पर है। किन्तु वास्तव में यह माँग केवल नगरों के उच्च वर्ग की है जिनका अनुपात मुसलमानों में अधिक से अधिक दस प्रतिशत होगा। १९७१ की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश में मुसलमानों की जनसंख्या का अनुपात १५ प्रतिशत था। १९८१ की जनगणना के आंकड़े अभी उपलब्ध नहीं हैं किन्तु उनसे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ेगा। अतएव उर्दू को दूसरी राज

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भाषा वनाने की माँग राज्य के केवल डेढ़ प्रतिशत लोगों की माँग मानी जा सकती है ।

वे सड़कों पर या वाज़ारों, सिनेमा में बोलीजानेवाली भाषा को द्वितीय राजभाषा नहीं वनाना चाहते । वे उस उर्दू को राजभाषा वनवाना चाहते हैं जिसे वे उर्दू कहते हैं और जिसमें आज कविता की जा रही है, विद्वानों द्वारा भाषण दिए जाते और पुस्तकें लिखी जाती हैं ।

द्वितीय राजभाषा उर्दू कैसी होगी ?

उर्दू के स्वरूप के वारे में सामान्य लोग ही नहीं, हिन्दी के वहुत से विद्वानों को भी भ्रम है । वे समझते हैं कि सिनेमा में या लखनऊ आदि वड़े नगरों में जो बोली समाज के एक विशेष स्तर में बोली जाती है, जिसमें बीच-बीच में कुछ चलते हुए फ़ारसी के वे शब्द आ जाते हैं जिनसे वे परिचित हैं, वही उर्दू है और उसीको द्वितीय राजभाषा वनाने की माँग की जा रही है । हिन्दी के अनेक साहित्यकार उर्दू नहीं पढ़ते । वे यह कह कर संतोष कर लेते हैं कि उर्दू तो हिन्दी की एक शैली है । उनकी यह ग़लत धारणा है कि यदि वह देवनागरी लिपि में लिखी जाय तो वे उसे समझ लेंगे । उन्हें यह नहीं मालूम कि आज उर्दूवाले जिसे उर्दू कहते हैं, उसका रूप हिन्दी से कितना भिन्न है, या उसका कितना अधिक फ़ारसीकरण हो गया है, वह हिन्दी से कितनी दूर चली गयी है । वहुवचन वनाने आदि में वह फ़ारसी और अरबी के व्याकरणों से नियंत्रित होती है, जैसे उसमें 'वकील' का वहुवचन "वकीलों" न होकर "वकला" होता है । जिस उर्दू की माँग की जा रही है वह फ़ारसी से बोझिल है; उसके व्याकरण से बहुत कुछ नियंत्रित है । उसमें उपमा, अलंकार, संदर्भ फ़ारसी साहित्य या मध्यपूर्व एशिया के हैं । उसका आधार फ़ारसी और मध्यपूर्व एशिया की संस्कृति है । उसमें भारतीय संस्कृति नाम मात्र को है । वही उर्दू आज उर्दू लेखकों, भाषण देनेवालों और उर्दू का प्रचार करने वालों की निगाह में उर्दू है । उसी उर्दू को ही राजभाषा वनाने की माँग की जा रही है । यह भी शर्त है कि वह विदेशी फ़ारसी लिपि में लिखी जाय । राज्य की जनता और हिन्दी के उक्त विद्वानों और सामान्य हिन्दी शिक्षित लोगों की जान-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारी के लिए आज की उर्दू के कुछ नमूने दिये जा रहे हैं। ये नमूने समाचार-पत्रों, कहानियों, उपन्यासों, उर्दू विद्वानों के लेखों और पुस्तकों से लिये गये हैं। इन्हें उन पत्र-पत्रिकाओं और उर्दू के उन मान्य लेखकों की पुस्तकों से लिया गया है जो सहज में मिल गयीं। इन्हें किसी क्रम से छाँटा नहीं गया। उर्दू की जो पुस्तक या पत्र हाथ लगा उसे खोलने पर जो अंश सामने आ गया वही लिख लिया गया है। कविता चुनने में ध्यान रखा गया है कि प्रसिद्ध हिन्दू-मुसलमान उर्दू कवियों की कविताओं से कुछ पंक्तियाँ दे दी जायँ।

समाचारपत्रों, कहानियों और उपन्यासों में सभी लेखक भरसक सरल भाषा का प्रयोग करते हैं क्योंकि इन्हें विद्वान ही नहीं, कम शिक्षित लोग भी पढ़ते हैं। पहले सरल उर्दू के नमूने, फिर विद्वानों की कविता और 'स्टैण्डर्ड' उर्दू गद्य के नमूने देखिए।

उर्दू समाचारपत्रों के शीर्षकों की भाषा के उदाहरण—

१. हुकूमत मज़दूरों के हक़ूक़ ग़सब कर रही है।

—**सियासत जदीद** २६-२-८२

२. अम्न के नाम पर इश्तेआल फैलाने की दिल-आज़ार कोशिशें।

—**ब्लिट्ज़ उर्दू** २७-२-८२

३. हिज़्बे मुख़ालिफ़ के इत्तेहाद के इम्कानात मादूम। राब्ता कमेटी तोड़ दी गई।

—**कौमी आवाज़** २४-२-८२

उर्दू समाचारों की भाषा के कुछ नमूने—

लोक दल के तीन पार्टियों के तालमेल के तोड़ देने के एकतर्फ़ा फ़ैसले ने हिज़्बे मुख़ालिफ़ के इत्तेहाद के इम्कानात मज़ीद मादूम हो गये हैं।

—**कौमी आवाज़** २४-२-८२

मोआहदये शिम्ला के ज़रिये दोनों मुमलिकत ने बाहम जंग न करने का अहेद कर लिया है। नाजंग मोआहदे की तजवीज़ हिन्दोस्तान के अफ़्कार व ख़यालात का आईना है।

—**कौमी आवाज़** २७-२-८२

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नई देहली—२५ फर्वरी : आज लोकसभा में···हकूमत की तरफ़ से मज़दूरों के ख़िलाफ़ किये जाने वाले मोअय्यना सख़्त इक़दामात पर एहतेजाज करते हुए हिज़्बे मुख़ालिफ़ से तआल्लुक़ रखनेवाले अराकीन बड़ी तादाद में ऐवान से वाकआउट कर गये।

—सियासत जदीद २६-२-८२

कलकत्ते की अम्न की फ़ज़ा को परागंदा करने की कोशिशें की गयीं लेकिन शुक्र है जिसे वाँयां वाज़ू हुकूमत ने बर वक़्त मुदाख़लत करके नाकाम कर दिया।

—ब्लिट्ज उर्दू एडीशन २७-२-८२

यूनिवर्सिटियाँ अर्बाबि कमाल को ऐसी डिग्रियाँ देकर अपने वज़न व वक़ार में इज़ाफ़ा करती हैं। कश्मीर यूनीवर्सिटी को हम मुबारकबाद पेश करते हैं कि इल्म व फ़न के एक सीमुर्ग़ के एक हुमा और ख़ुशकलामी व शेवा बयानी के एक अन्दलीब को अपने हल्क़े में लेकर अपनी तौक़ीर बढ़ाई वर्ना मौलानाये मुहतरम के रुत्वे का शहवाज़ एक ऐसे सद्रतुल-मुंतहा पर बैठ चुका है जहाँ इनको किसी कल्ग़ी की ज़रूरत नहीं ख्वाह वह कैसी ही ज़र्रीं और मुकल्लल हो।

—"मुआरिफ" १९८१ (गुशुरात)

मज़हब की तबदीली के हालिया वाक़्यात का तआल्लुक़ अक़ायद से नहीं है। यह वाक़्यात समाज के खिलाफ़ एक बग़ावत की हैसियत रखते हैं और इस बग़ावत को रोकने के लिये इसके अस्बाब को ख़त्म करना होगा।

—कौमी आवाज एडीटोरियल २४-२-८२

अब कहानियों और उपन्यासों की भाषा के नमूने देखिये।

शाहीन ख़ूबसूरती से ज़्यादा ज़ेहानत के लेहाज़ से दिलचस्पी की मुस्तहक़ थी। वह होनहार, हँसमुख, हाज़िरजवाब और बहुत ज़्यादा जिद्दतपसन्द थी। हर नई चीज पर मर मिटना उसकी फ़ितरत में शामिल था। वह नये अन्दाज़ से अपने को संवारना पसंद करती थी। मश्रिक़ी माहौल में जहाँ लम्बे बालों को ही ख़ूबसूरती ख़याल किया जाता है उसने

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बाल कटवाने का जुरअतमंदाना एक़दाम किया। तान व तशनीअ की क़तई परवाह नहीं की।

—नया दौर दिसंबर १९८१

मियां 'आजाद' जव घर से निकले गिर्गिट की तरह रंग वदलते रहे। कभी दर्वेश शेखूखत पनाह, वली अल्लाह, आरिफ़-व-अल्लाह, हक़ अगाह, मशीखत दस्तगाह, कभी जुरआ-नोश, मग़वचै वादा फ़रोश, रिन्दे आशाम, सुवह को शराव, शाम को जाम, कभी पहलवान कभी फिंकैत वन गये।

फ़सानये आज़ाद

कमलादेवी अलाउद्दीन का शुक्रिया अदा करते हुए कहती है—"नहीं हुज़ूर, मैं कुफ़राने नेमत नहीं कर सकती। मगर यहाँ महाराज का शुक्रिया अदा करने की ज़रूर जुरअत करती मगर मेरी खुश्क ज़वान, मेरे परेशान हवास और उर्दू जवान से मेरी नावाक्फ़ियत मुझको ज़वान खोलने की इजाज़त नहीं देती।"

मोहम्मद अली तबीब—खिज्र खाँ देवलदेवी

"काले खां की कुर्बानी अमर कान्त की जिंदगी का शीराज़ा बन गई। इसमें तड़पन न थी, बेकरारी न थी, इस्तेहकाम न था, फ़ौरी तग़य्युरात के झोंके इसके वर्क़ों को परेशान करते रहते थे। इस शीराज़े ने इसमें तवाज़ुन और दिली मुतावक़त पैदा कर दी :"

मुंशी प्रेमचन्द—मैदान अमली

अव सामान्य उर्दू गद्य साहित्य के कुछ नमूने दिये जाते हैं :

अदव ख़याल और ज़वान की एक ऐसी तख़लीक़ी इकाई का नाम है जिससे मसर्रत के साथ बसीरत हासिल होती है। अदव में जमालियाती कैफ़ीय्यत ज़ज्वाती और तख़लीक़ी अन्सर की आमेज़िश से पैदा होती है और इसका इज़हार ज़वान की मजाज़ी शक्लों यानी तश्बीह, इस्त्यारा, पैकर, अलामत, कनाया, मजाज़, रसल और दूसरे तख़लीक़ी रिश्तों के ज़रिये ज़ाहिर होता है।

'शायर' उर्दू के मुक़्तदर जरीदों में से एक हैं। इसे उर्दू तहज़ीब का नुमायन्दा कहना ग़लत न होगा। 'शायर' उर्दू अदव की ख़िदमत और तरक़्क़ी व तर्वीज की एक रवायत का नाम है जिसकी इब्तदा १९३० से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुई। यह एक अदब-आफ़्रीं जरीदा है जिसके इजराअ के बाद से इसने न सिर्फ़ आला व सेहतमंद अदव शाया किया बल्कि शायरों और अदीबों की मुतअद्दद नस्लों की तरबीयत व तरक़्क़ी में मुवानत की। आज उर्दू के मुतअद्द अहेम अदीब ऐसे हैं जिन्होंने अपने तख्लीक़ी सफ़र का आग़ाज़ 'शायर' से किया।

—'आजकल' दिसम्बर १९८१ 'कुंवरसेन'

—रिवियु माहनामा 'शायर' खास नम्बर १९८०

'शेफ़्ता' ने जिन शोअरा की तारीफ़ की है इनमें से वेश्तर वही हैं जिनकी तारीफ़ आज तक तमाम सुख़न-संज व सुख़न-फ़हम नक्क़ाद करते चले आये हैं लेकिन वाज़ की तारीफ़ के सिल्सिले में 'शेफ़्ता' ने जो सीग़े अफ्ज़ल-उल्-मुतफ़ैजल के इस्तेमाल किये हैं वह उनके हरीफ़ों के लिये तो सक़ील थे ही लेकिन ऐसा मालूम होता है कि ख़ुद इनके मम्दूहीन को भी इसका एहसास हो गया था कि "रकाब क़िर्जुउलसलान की बोसा-देही के लिये कुर्सीएनुह-फ़लक ज़ेर पाये अन्देशा" रख दी गई है।

(ख़ालिद हुसेन 'क़ादरी')

—मआरिफ फरवरी १९८२

मुतअद्द मब्सूत व ज़ख़ीम मख़तूतों का कमाहक़ा पढ़ना भी कोई आसान काम नहीं। अहले-ज़बान को भी इससे ओहदा-वरआ होना मुश्किल है चेजाये कि किसी मग़िरबी से यह तवक़्क़ो की जाय कि वह हर्फ़न-हर्फ़न इसे पढ़ कर इस क़रार वाक़ई तौर पर इस्तेखराज़ व इन्‌विसात कर सकेगा।

(खालिद हुसेन क़ादरी)

—मआरिफ फरवरी १९८२

उर्दू साहित्य और काव्य के कुछ नमूने :—

करता है जो तै सवादनामा यूँ हर्फ़ हैं नक़्श पाये ख़ामा
वह दामने दश्ते शौक़ का ख़ार यानी ताजउलमुलूक दिल ज़ार
एक जंगले में जा पड़ा जहाँगर्द सैहराय अदम भी था जहाँ गर्द

(गुलज़ार नसीम —पं० दया शंकर कौल)

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुमां आबाद हस्ती में यक़ीं मर्दे मुसलमां का
बयाबां की शबे तारीक में क़ंदील रहवानी
मिटाया क़ैसरो कसरा के इस्तिब्दाद को जिसने
वह क्या था ज़ोर हैदर, फ़ुक्रे बूज़र, सिद्क़े सलमानी ।।

—इकबाल

गुवार आलूदए रंगों नसब हैं वालो पर तेरे
तु ऐ मुर्ग़े हरम उड़ने से पहले पर-फिशां होजा
ख़ुदी में डूब जा ग़ाफ़िल यह सर्रे ज़िन्दगानी है
निकल कर हल्क़ए शामो सहर से जाविदाँ होजा ।।

—इकबाल

इसमें ख़ूबी सी कुछ आईने मुकाफ़ात की थी
कुछ जुनूंख़ेज बग़ावत सी भी जज़्बात की थी
इक फ़सूँ-साज़ शरारत सी कुछ रात की थी
वर्ना उसको न मुझीको ख़बर इस बात की थी
कि यह रात मुक़द्दर में मुलाक़ात की थी

ठंडी क़ाफी —आनन्द नरायन 'मुल्ला'

'रामायन का एक सीन'

रुख्सत हुआ वह बाप से लेकर ख़ुदा का नाम
राहे वफ़ा की मंज़िले अव्वल हुआ तमाम
मंजूर था जो माँ की ज़ियारत का एहतमाम
आँखों से अश्क पोंछ के दिल से किया कलाम
आख़िर है कुछ हद्दे सितमो ज़ुल्मो जौर भी
हमको उदास देख के ग़म होगा और भी

ऐ ख़ाके हिन्द तेरी अज़मत में क्या गुमां है
दरयाए फ़ैजे कुदरत तेरे लिये रवां है।
तेरी जबीं से नूरे हुस्ने अजल अयाँ है
अल्लाह रे ज़ेबो ज़ीनत क्या औजे इज़्ज़ोशां है
हर सुवह है यह ख़िदमत ख़ुर्शेद पुर ज़िया की
किर्नों से गुंधता है चोटी हिमालिया की

बृज नरायन 'चकबस्त' लखनवी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तोडी कलाई ज़ुल्म की ज़िन्दाँ के दर खुले
ज़ंजीर कट के गिरगई बाबे असर ख़ुले
बर्सों के बाद बुत-शिकन ओ हक़ निगर ख़ुले
थे जिसकी आरज़ू में वह राज़े सहर ख़ुले
खुश्बू घुली फ़ज़ाओं में दिल शाद हो गये
गुलशन के फूल क़ैद से आज़ाद हो गये

वह बन्देमातरम की सदा वह सभों का जोश
टकरा गये पहाड़ से ग़ाज़ी व सरफ़रोश
हैरत से देखती रही दुनिया अलम बदोश
एक मर्दे बावफ़ा का वह अन्दाज़ फ़िक्रो होश
पसपा किया हरीफ़ को हर हर महाज़ पर
लड़ता रहा निहत्था वह दुश्मन से बेख़तर

('वक़ार नासरी'-नयादौर १९८१)

ख़ालिक़े नक्शैय फ़िर्दौसे वरीं शाहजहाँ
तुझ पे रोशन थे यह असरारे हक़ीक़त शायद
वक़्त है अस्ल में एक सैले रवाँ तेज़ क़दम
जिसकी एक लहर में एक मौज में बहे जाते हैं
सरवतो दौलतो इक़बालो ज़फर जाहो हशम
ज़िदगी हुस्नो तवानाई, जवानी दम खम
तूने इन आर्ज़ी चेहरों से तग़ाफ़ुल बर्ता
कुछ न सम्झा इन्हें रंगीन फ़रेबों के सिवा
और यह चाहा कि इसी कारगहे फ़ानी में
तेरे दर्दे ग़मे पिन्हाँ को मिले उम्रे दवाम
हश्र तक जिंदा ओ पाइन्दा रहे इश्क़ का नाम

(आलम, फतेहपुरी नया दौर सितंबर १९८१)

उर्दू के इन उदाहरणों से हिन्दीवालों को कुछ आभास हो जायगा कि किस "उर्दू" भाषा को भारत के इस हृदय-देश में द्वितीय राजभाषा बनाकर उसे ९५ प्रतिशत जनता पर लादने का प्रयत्न किया जा रहा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

है। द्वितीय राजभाषा बनने पर सरकारी नौकरियों में ही नहीं म्यूनिसिपैलटियों, नोटिफाइड और टाउन एरियाओं, यहाँ तक कि कोआपरेटिव सोसाइटियों और ग्राम सभाओं में कुछ लोग इस उर्दू के उपयोग की माँग कर सकते हैं, और द्वितीय राजभाषा होने के कारण उसका उपयोग करने से मना नहीं किया जा सकेगा। इस प्रकार द्वितीय राजभाषा के रूप में यह सभी को पढ़नी होगी। यही नहीं, उर्दूवाले इसे फ़ारसी लिपि में लिखने की अनिवार्य शर्त लगाते हैं। इसलिए हमारे राज्य में उर्दू भाषा ही नहीं, फ़ारसी लिपि भी सीखना प्रायः अनिवार्य हो जायगा। द्वितीय राजभाषा होने के कारण शिक्षा विभाग और शिक्षा बोर्ड को उसका पढ़ना अनिवार्य करना होगा तथा परीक्षाओं के सब प्रश्न-पत्र उर्दू में भी छापने पड़ेंगे नहीं तो "माइनारिटीज' के हितों की रक्षा न हो सकेगी।

हमारे मंत्री, विधायक, नौकरशाह, अधिकारी, कर्मचारी इन नमूनों को पढ़कर देखें कि वे इस भाषा को कितना समझ सकते हैं। उन्हें यह भाषा सीखनी होगी, यदि न भी सीखें तो विधान सभा में उर्दू के भाषण या विज्ञप्तियाँ समझने के लिए उन्हें एक "फ़ारसी-हिन्दी" कोश की आवश्यकता होगी। विधान सभा और शासन का काम ठीक तरह से चलाने के लिए माननीय श्री ब्रह्मदत्त जी को (जो वित्तमंत्री होने के कारण उसके लिए धन देंगे) एक ऐसा वृहद् "फ़ारसी-हिन्दी' कोश तैयार कराकर मंत्रियों, मंत्रियों के सहायकों, सचिवों से लेकर सहायक सचिवों, विधायकों और राज्य के विभिन्न विधायकों को देना होगा। फ़ारसी कोश इसलिए आवश्यक होगा कि क्रियाओं, विभक्तियों और सर्वनामों तथा कुछ संज्ञाओं को छोड़कर इसमें अधिकांश फ़ारसी शब्द ही होते हैं। हिन्दी जानने वाले उन्हें तभी समझ सकेंगे जब उन्हें उनका अर्थ हिन्दी में बताया जाय। मैं थोड़ी उर्दू जानता हूँ किन्तु इन नमूनों के अनेक शब्द मुझे 'लुग़त' में देखने पड़े। एक नमूने में "ज़रीं और मुकल्लल" आया। "जरीं" के अर्थ तो मैंने लगा लिए पर "मुकल्लल" ने मुझे एक दम परास्त कर दिया। वड़ी कठिनाई से और प्रयास के बाद मालूम हुआ कि उसके अर्थ "जड़ाऊ" (जिसमें नग या रत्न जड़े हों) है। 'जड़ाऊ गहने' साधारण

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

लोग समझ लेते हैं। किन्तु 'जड़ाऊ' "गँवारू" शब्द हैं। वह शाही ज़बान फ़ारसी में "फ़िट" नहीं बैठता, इसलिए "मुकल्लल" इस्तेमाल किया गया। स्कूली जीवन में मेरे कुछ साथियों ने प्रथम भाषा उर्दू ली थी। उनकी उर्दू की किताव में एक वढ़िया शेर था जिसे वे वहुधा सुनाया करते थे :—

पशशे से सीखे शेव-ए-मर्दानगी कोई
जव क़स्दे-ख़ूँ को आये तो पहले पुकार दे।

तव मेरी समझ में नहीं आता था कि शायर ने "मच्छर" ऐसे शब्द के लिए "पशशे" का उपयोग क्यों किया है। अव समझने लगा हूँ कि वही उर्दू है जिसमें इस देश के शब्द कम से कम उपयोग में लाये जायँ और विदेशी भाषा फ़ारसी के अधिक से अधिक शब्द लाये जायँ। उस फ़ारसी के बोझ से लदी भाषा को राजभाषा वनाने पर माननीय श्री नौनिहाल सिंह और माननीय श्री ब्रह्मदत्त को वृहद "फ़ारसी-हिन्दी कोश" बनवा कर लाखों की संख्या में छपवा कर मंत्रियों, विधायकों, सरकारी अधिकारियों, कर्मचारियों, विभागाध्यक्षों, पत्रकारों आदि को मुफ़्त देना होगा, चाहे उसके लिए स्टेट बैंक आफ इंडिया से "ओवरड्राफ्ट" ही क्यों न लेना पड़े।

इस राज्य की जनता का ध्यान एक और बात की ओर दिलाना आवश्यक है। उर्दू हमें कितना अभारतीय बना देती है, उसका एक नमूना भी इन नमूनों में है। पंडित बिरज नरायन चकबस्त शायद क़ौम से "बिरहमन" थे और नाम से मालूम पड़ता है कि उनका मज़हब हिन्दू था। वे उर्दू के वहुत वड़े "क़ौमी शायर" थे। उन्होंने एक नज़्म भगवान रामचंद्रजी पर भी लिखने की मेहरवानी की। उसमें भगवान रामचंद्रजी वनवास पर जाने के लिए अपने पिता महाराज दशरथ से विदा होकर अपनी माता के पास जा रहे हैं। पंडतजी ने उसे इस तरह अदा किया है :

"रुख़सत हुआ वह वाप से लेकर ख़ुदा का नाम"

गद्य में इसका अन्वय होगा "वह (राम) वाप से ख़ुदा का नाम लेकर रुख़सत (विदा) हुआ"। यहाँ आदरसूचक 'रुख़सत हुए' न कह कर कुली-कवाड़ी के लिए इस्तेमाल किये जानेवाले एक वचन का उपयोग किया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गया है। यह हिन्दुओं के आराध्य के प्रति कितनी अशिष्टता और अवमानना है ? दूसरी बात जो ध्यान देने की है वह "लेकर खुदा का नाम" है। हमारे भगवान रामचंद्रजी के मुँह से "खुदा का नाम" निकलवाना शायर की शिष्टता और संस्कृति है।

शायरे आज़म चक़बस्त एक दूसरी जगह सीताजी के रूप का वर्णन करते हुए लिखते हैं :—

लव लाल वदख्शाँ से लिये दुर्रे अदन से

यहाँ मध्यपूर्व की संस्कृति बोल रही है। जनाव चकवस्त को सीताजी के ओठों की उपमा वदख्शां के लाल (माणिक) और दाँतों की उपमा अदन के मोतियों (दुर्रे) से देने की सूझी। उन्हें कोई भारतीय उपमा नहीं मिली। मिलती कैसे ? उर्दू साहित्य पढ़नेवाले को मध्यपूर्व एशिया की संस्कृति सिखाता और उसे उसमें दीक्षित कर देता है। वह भारतीयता से कट जाता है। यह ऐसा विषय है जिसे विस्तार से बाद में लिखा जायगा। इस राज्य के नागरिक को हम मस्तिष्क और भावना से भारतीय वनाना चाहते हैं या मध्यपूर्व एशिया का निवासी ?

किन्तु इस समय पाठक यह देखें कि जिस भाषा को हम पर थोपने का प्रयास किया जा रहा है, उसका स्वरूप क्या है और क्या वह हमारे और हमारी संतान की उन्नति में बाधक होगी या साधक ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुछ प्रश्न

उर्दू को दूसरी राजभाषा बनाने के समर्थकों से मैं बड़ी विनम्रता के साथ कुछ प्रश्न करना चाहता हूँ। उत्तर देते समय यह याद रखिए कि यदि उर्दू को द्वितीय राजभाषा बना दिया गया तो (१) सरकारी कामकाज फ़ारसी लिपि में इसी उर्दू में करना होगा जिसके कुछ सामान्य उदाहरण दिये जा चुके हैं। अधिकारी तथा कर्मचारी आवश्यकता पड़ने पर इसी भाषा और लिपि को पढ़ने और लिखने और बोलने को बाध्य होंगे, (२) सरकारी सेवा में द्वितीय राजभाषा उर्दू का उक्त स्तर का ज्ञान और कार्यकुशलता अनिवार्य कर दी जायगी, (३) राज्य की द्वितीय भाषा होने के कारण हाई स्कूलों और इंटर कालेजों में उक्त प्रकार की उर्दू का पढ़ना तथा फ़ारसी लिपि में उसका लिखना अनिवार्य कर दिया जायगा, (४) विधान मंडलों में जो सदस्य चाहेंगे वे उसीमें बोल सकेंगे। उनके भाषण फ़ारसी लिपि में आशुलिपि में लिखे जायेंगे तथा विधान मंडलों की कार्यवाही में इसी लिपि में छापे जायेंगे। प्रश्न भी उसी उर्दू में किये जा सकेंगे और मंत्रियों को उनके उत्तर भी इसी भाषा में देने होंगे (५) सरकार की सब विज्ञप्तियां, आदेश, रिपोर्टें, बजट, राज्यपाल का भाषण तथा अन्य सभी प्रकाशन इसी उर्दू भाषा और फ़ारसी लिपि में भी प्रकाशित करने होंगे।

मेरा पहला प्रश्न मंत्रियों और विधायकों से है :

क्या आप उपर्युक्त स्तर की उर्दू में दिये गये भाषणों को ठीक तरह से समझ सकेंगे ? यदि ठीक तरह से न समझ सके तो उनका उत्तर कैसे देंगे ? उर्दू प्रश्नों का उत्तर उर्दू में ही देना होगा। क्या आप यह उर्दू बोल सकेंगे ? यदि आप उर्दूभाषी विधायकों को अपनी बात समझाना चाहेंगे तो क्या आप उसे ऐसी उर्दू में कह सकेंगे जिसे वे बोलते या समझते हैं ? अथवा संयुक्त राष्ट्र संघ की तरह आप ऐसा प्रबंध करेंगे कि आप जो कुछ हिन्दी में कहें वह आपके कहने के साथ ही अनुवादित होकर उर्दूभाषी विधायकों को उर्दू में सुनाई पड़े? क्या आपके पास ऐसे साधन और ऐसे आशु अनुवादक हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिनका इस उर्दू और हिन्दी पर समान अधिकार हो ? अध्यक्ष को भी कभी-कभी ऐसी भाषा में ही बोलना होगा और उनके व्यवस्था आदि देने के लिए ऐसे ही तात्कालिक अनुवाद का प्रबंध करना होगा। क्या यह सब हो सकेगा ?

मेरा दूसरा प्रश्न उत्तर प्रदेश के ९५-९६ प्रतिशत हिन्दीभाषियों, बुद्धिजीवियों और उनके राजनीतिक प्रतिनिधियों से है। क्या आप अपने वच्चों को यह अतिरिक्त भाषा पढ़ाने को और फ़ारसी लिपि सिखाने को तैयार हैं ? इस उर्दू और फ़ारसी लिपि को सीखने तथा इसमें परीक्षा देने के लिए उन्हें कितना परिश्रम करना होगा, इसका आपको अनुमान है ? क्या वे वर्तमान विषयों के अतिरिक्त इस भाषा के लिखने पढ़ने का बोझ सहन कर सकेंगे ?

तीसरा प्रश्न उत्तर प्रदेश के विद्यार्थियों से है। क्या आप लोग इस भाषा को, जिसके नमूने दिये गये हैं, पढ़ने और फ़ारसी लिपि को शुद्ध रूप से लिखने की कुशलता प्राप्त करने को तैयार हैं ? यदि उर्दू द्वितीय राजभाषा वना दी गयी तो आपको इसे पढ़ना ही होगा क्योंकि राज्य से मान्य भाषा का दर्जा पाने पर सरकार स्कूलों में इसका पढ़ना राजभाषा हिन्दी की तरह अनिवार्य कर देगी। जो युवक सरकारी नौकरी करना चाहेंगे उन्हें इस उर्दू और फ़ारसी लिपि के पर्याप्त ज्ञान के विना नौकरी न मिलेगी।

मेरा चौथा प्रश्न सरकार से है। वह यह कि दो प्रतिशत से भी कम लोगों द्वारा प्रयुक्त भाषा को द्वितीय भाषा बनाने से इस गरीब और करों (टैक्सों) के भार से परेशान राज्य का कितना व्यय वढ़ जायगा ? राज्य में सचिवालय से लेकर जिलों के जिन अधिकारियों को आशुलिपिक (स्टेनोग्राफर) दिये जाते हैं, उन्हें उर्दू आशुलिपिक भी देने होंगे। इनकी कितनी संख्या होगी ? राज्य के लिए कितने उर्दू टाइप-राइटर खरीदे जायेंगे और कितने टाइपिस्ट रखे जायेंगे ? इनके लिए कितना अतिरिक्त कागज़, मेज़, कुर्सियां, कार्बन पेपर, रिंवन आदि की आवश्यकता होगी ? सचिवालय के विभिन्न विभागों में हिन्दी के आदेशों, ज्ञापों, विज्ञप्तियों, रिपोर्टों आदि का हिन्दी से उर्दू में, और उर्दू से हिन्दी में अनुवाद करने के लिए कितने अनु-

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वादक रखे जायेंगे ? भाषा विभाग में उर्दू विभाग खोल कर उसका कितना विस्तार करना होगा ? बजट आदि को उर्दू में भी पेश करना होगा । सभी या अधिकाँश सरकारी आदेश आदि उर्दू में भी छपाने होंगे । इस समय गवर्नमेंट प्रेस की उर्दू में इतना काम करनेकी क्षमता नहीं है । गवर्नमेंट प्रेस में एक नया उतना ही बड़ा उर्दू विभाग खोलना होगा जितना बड़ा हिन्दी का विभाग है । गवर्नमेंट प्रेस के इस विस्तार में कितना व्यय होगा ?

इसमें, तथा उर्दू को द्वितीय भाषा बनाने के परिणामस्वरूप जो नयी नियुक्तियां करनी होंगी या जो सामान खरीदना होगा, उसका आवर्तक (रिकरिंग) और अनावर्तक (नान-रेकरिंग) व्यय कितने करोड़ वार्षिक और एक मुश्त होगा ? आपको आज ही विकास योजनाओं पर व्यय के लिए धन जुटाने में परेशानी हो रही है । कर भार अभी ही इतना अधिक है कि जनता उससे पिसी जा रही है । आप आज के व्यय को ही पूरा नहीं कर पाते । आपको कितना अधिक ओवरड्राफ्ट लेना पड़ रहा है ? प्रति वर्ष आप जनता से कितने करोड़ का ऋण लेते हैं और कितना ब्याज जनता के करों से दिया जाता है ? उर्दू को द्वितीय भाषा बनाने पर जो करोड़ों रुपयों का आवर्तक व्यय बढ़ जायगा, उसे पूरा करने का क्या आप ऐसा प्रबंध कर सकेंगे कि करों और महंगाई से त्रस्त इस राज्य की जनता पर बोझ न पड़े ? क्या आप में उर्दू की माँग करनेवालों पर इस अपव्यय के लिए "उर्दू सेस" लगाने का साहस है ? क्या आपने उत्तर प्रदेश की ६५ प्रतिशत जनता में अलोकप्रिय इस क़दम को उठाने के पहिले इसके राजनीतिक, भावनात्मक, प्रशासनिक तथा आर्थिक परिणामों पर ठंडे दिल से विचार किया है ?

क्या आपने यह भी सोचा है कि राजर्षि टण्डन की जन्मशती के वर्ष में आप उनके सारे जीवन के काम पर हरताल फेर कर उनका कितना अपमान कर रहे हैं ? इस अशुभ और जनता विरोधी काम को करने के बाद हिन्दी संस्थान का, जिसके अध्यक्ष मुख्यमंत्री हैं, दो मंत्री उपाध्यक्ष हैं और जो वास्तव में सरकारी तंत्र का एक विभाग है, राजर्षि की जन्मशती का आयोजन करना क्या राजर्षि का मखौल उड़ाना और उनका अपमान करना नहीं है ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उर्दू के प्रति हिन्दीवालों का दृष्टिकोण

हिन्दीवालों का उर्दू के सम्वन्ध में क्या दृष्टिकोण है, उसे संक्षिप्त में वता देना आवश्यक है ।

(१) रार्जषि पुरुषोत्तम दास टंडन उर्दू को हिन्दी की एक शैली मानते थे । भाषा की दृष्टि से उर्दू हिन्दी का ही एक रूप है । यद्यपि संविधान ने उसे स्वतंत्र भाषा माना है तथापि अधिकांश हिन्दीवाले उसे अव भी हिन्दी की एक शैली ही मानते हैं । मैं भी उनमें से एक हूँ । दोनों की क्रियायें, विभक्तियाँ, ढांचा मूलतः एक है । किंतु संविधान के कारण हम उसे स्वतंत्र भाषा मानने को वाध्य हैं ।

(२) हिन्दीवाले उर्दू को अपनी एक शैली समझने के कारण उसके सरल और हिन्दी की प्रकृति में आ जानेवाले शव्दों को विना किसी संकोच के वरावर इस्तेमाल करते रहे हैं । सूर और तुलसी तक ने करार, जहर, गरीबनिवाज, निमकहरामी, गुलाम ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है । आज भी सामान्य हिन्दी लेखक उर्दू शव्दों का वहिष्कार नहीं करते ।

हिन्दीवाले उर्दू के प्रति सद्भावना रखते हैं । हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में उर्दू की कहानियां, गजलें आदि वरावर छपती हैं ।

(४) किन्तु हिन्दी और उर्दू के लेखकों और साहित्य में जो भेद है उसके कारण दोनों शैलियां एक दूसरे से दूर होती जा रही हैं। वे भेद यह हैं—

(क) हिन्दी साहित्य ने सदैव भारत या हिन्दोस्तान की वात कही, सोची, और प्रचारित की । उसकी दृष्टि सदैव अखिल भारतीय रही । उसने अपने साहित्य में भारतीय पशु-पक्षी, नदियों, प्राचीन भारतीय महापुरुषों, वीरों और वीरांगनाओं का उपयोग किया ।

उसका सौंदर्यबोध भारतीय है । उसकी उपमाएँ, उसके अलंकार, उसके विचार भारतीय हैं । वह सदैव अखिल भारतीय एकता का प्रचार करती रही है। उसके साहित्य में संकीर्णता नहीं है। वह सभी क्षेत्रों और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वर्गों जैसे सिक्ख, मुसलमान, ईसाई के प्रति आदर के भाव दिखलाती रही है।

इसके विपरीत उर्दू का दृष्टिकोण भारत के प्रति उदासीन है। वह मध्यपूर्व की संस्कृति, विचारों, वहाँके पशु-पक्षियों, वीरों (हीरो) का गुणगान करती है, वह भारतीय संस्कृति, इतिहास और विचारों की उपेक्षा करती है और मध्यपूर्व की संस्कृति और इतिहास का, जो अभारतीय है, प्रचार करती है। यहाँ केवल संकेत मात्र दिया गया है। इस विषय पर विस्तार से एक लेख अलग लिखा जायेगा।

(ख) संविधान में हिन्दी की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को स्पष्ट कर सरकार का कर्त्तव्य इस प्रकार निश्चित किया गया है :"हिन्दी की वृद्धि करना, इसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके।" हिन्दी यह काम अपने जन्म से बराबर करती रही है और हिन्दीवाले अब इस कार्य में और अधिक सचेत हो गये हैं।

इसके विपरीत उर्दू भारत की सामासिक संस्कृति (इण्टिग्रेटेड कल्चर) की कौन कहे, केवल मध्यपूर्व की संस्कृति का प्रचार करती है। वह अब तक भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यवित करने में एकदम असमर्थ रही है। वह भारत की सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति न करके केवल मध्य-पूर्व और अरब की संस्कृति की अभिव्यक्ति करती है।

(ग) संविधान में हिन्दी के लिये लिखा है :—"इसकी (हिन्दी की) आत्मीयता (प्रकृति) में हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूची में दी गयीं भारतीय भाषाओं के रूप, शैली और पदावली को आत्मसात करते हुए तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ उसके शब्द भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से तथा गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना।"

इसके विपरीत उर्दू में उसका शब्द भंडार भारतीय भाषाओं से समृद्धि न करके अभारतीय अरबी और फ़ारसी शब्दों की भरमार से किया जाता है। सामान्य चलते हुए हिन्दी शब्दों के स्थान पर फ़ारसी या अरबी शब्दों का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रयोग करना उसमें गौरव की बात समझी जाती है (जैसे मच्छर ऐसे चलते शब्द के लिए सामान्य कविता में फ़ारसी का पश्शा लिखना)। इस कारण वह दिनों-दिन अधिकाधिक अभारतीय और कठिन होती जा रही है।

(घ) उसकी लिपि अभारतीय है। **उसमें शुद्ध रूप से इस देश की भाषाओं के शब्द नहीं लिखे जा सकते हैं।** ऐसा सामान्य नाम जैसे "राम प्रसाद" भी "रामपरसाद" ही लिखा जाता है। वह लिपि अभारतीय तो है ही, वह अनेक भारतीय शब्दों को ठीक तरह से लिखने में भी असमर्थ है। भारत की सामासिक एकता के लिए इस शती के आरंभ से ही जस्टिस शारदा चरण मित्र ने सब भारतीय भाषाओं को देवनागरी लिपि में लिखने का आन्दोलन चलाया था और 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकाला था जिसमें सभी भारतीय भाषाओं के लेख देवनागरी में शुद्धतापूर्वक छापे जाते थे। आचार्य विनोबा भावे भी उसीका प्रचार आज भी कर रहे हैं। किन्तु उर्दूवाले अभारतीय फ़ारसी लिपि--जो इस देश की भाषाओं के लिए अनुउपयुक्त है--छोड़ने को तैयार नहीं क्योंकि न तो वे भारतीय भाषाओं के शब्द लेना चाहते हैं और न अरबी, फारसी से अधिकाधिक शब्द लेना बंद करना चाहते हैं।

अतएव उर्दू हिन्दी की एक शैली होते हुए भी उर्दूवाले उसे लिपि और शब्दावली में मध्य-पूर्व की संस्कृति की वाहिका और विदेशी अवैज्ञानिक लिपि का प्रयोग कर उसे अभारतीय बनाने का आग्रह कर इसे न तो भारतीय बनने देते हैं और न इसे भारत की सामासिक संस्कृति के प्रचार का माध्यम ही।

हिन्दीवाले फिर भी उर्दू का विरोध नहीं करते। आज तक हिन्दी के किसी विद्वान ने मुंशी रघुपति सहाय 'फिराक' गोरखपुरी (जो मेरे घनिष्ट मित्र थे) की तरह "मैं हिन्दी का दुश्मन हूँ" लेख नहीं लिखा, और न लिख सकता है। न वे उर्दूवालों की तरह जो भारतीय भाषाओं को अछूत समझते हैं, उर्दू शब्दों का प्रयोग करने में संकोच ही करते हैं। वे उर्दू कविताएँ आदि देवनागरी में छापते रहते हैं। वह उर्दू के विरोधी नहीं, केवल उसको द्वितीय राजभाषा बनाने का विरोध करते हैं जिसके कुछ कारण ऊपर दिये गये हैं। वे उर्दू की उन्नति चाहते हैं। उसे हिन्दी की एक शैली समझने के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कारण वे उसका विरोध कैसे कर सकते हैं ? उसमें फ़ारसी के शब्द भी हों, इसके भी हम विरोधी नहीं। हम इसे शैली की विशेषता मानते हैं। किन्तु दाल में निमक डाला जाता है, निमक में दाल नहीं डाली जाती। उर्दू में फ़ारसी रूपी निमक नहीं डाला जा रहा है बल्कि फ़ारसी रूपी निमक में उर्दू की दाल डाली जाती है। इसी कारण वह हमें नहीं रुचती। सरल उर्दू का हम सदा स्वागत करते हैं और करते रहेंगे, किन्तु मध्य पूर्व की संस्कृति से ओत-प्रोत एवं उसे फ़ारसी तथा अरबी के अनावश्यक निकट लानेवाली 'तथाकथित' भारतीय मुसलमानों की **"छोटी फ़ारसी"** हमें नहीं पसन्द है। वह कभी भारतीय जनता में लोकप्रिय नहीं हो सकती।

उर्दू और मैं

मेरे इस पुस्तिका तथा अन्य ऐसे लेख लिखने के कारण शायद कोई पाठक समझें कि मैं उर्दू का विरोधी हूँ क्योंकि इसमें बिना किसी लगाव या संकोच के मैंने उर्दू भाषा का इतिहास और स्वरूप एवं दृष्टिकोण जैसा समझा वैसा लिख दिया है। मैं न तो प्रोफ़ेसर हूँ और न भाषा का इतिहासज्ञ, न भाषा वैज्ञानिक। एक जिज्ञासु की तरह निजी और स्वतंत्र अध्ययन से इस संबंध में जो समझा वह लिख दिया है। यदि मुझसे कोई भूल हुई हो तो उसे सुधारने के लिए मैं सदैव तैयार हूँ।

किन्तु इस समय के दुर्भाग्यपूर्ण वातावरण में लोगों को यह भ्रम हो सकता है कि मैं उर्दू का विरोधी हूँ। मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं उर्दू का विरोधी नहीं हूँ। उसके साहित्य और उसकी कविता जितनी समझ पाता हूँ उतना रस लेता हूँ। मैं उसकी उन्नति चाहता हूँ। यह भी चाहता हूँ कि वह अधिकाधिक "भारतीय" होती जाय। सरकार इसकी उन्नति और समृद्धि के लिए जो उचित कदम उठाती है, उसका भी समर्थन करता हूँ। मैं तो केवल उसे इस राज्य की द्वितीय भाषा बनाने का विरोधी हूँ। अपने इस विरोध के कारण मैंने उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित पैम्फ़लेटों में स्पष्ट किये हैं। जब मैं राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन की तरह उसे हिन्दी की एक शैली समझता हूँ, अर्थात उसे हिन्दी का ही एक रूप मानता हूँ, तब उसका विरोध कैसे कर सकता हूँ ? इसके सिवाय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब मैं अंग्रेजी, फ्रेञ्च, रूसी आदि साहित्य को (अनुवादों में ही सही) पढ़ता हूँ तब उर्दू साहित्य कैसे नहीं पढ़ूँगा ? उसका पढ़ना इसलिए भी जरूरी है कि मैं अपने साथ रहनेवाले भाइयों के विचार और साहित्य को जानूँ। लखनऊ में जब ग़ालिब शती मनायी गयी तब मैं उसके जलसे में गया और आनन्द लिया। किन्तु जिन लोगों को यह संदेह हो कि मैं उर्दू का विरोधी हूँ उनकी जानकारी के लिए अपने उर्दू के प्रेम और कार्य के बारे में कुछ मोटी-मोटी बातें बताना आवश्यक समझता हूँ। अपने मुँह से अपने उर्दूप्रेम का कुछ भी बखान करने में मुझे संकोच होता है। यह शिष्टता के विरुद्ध है। पर इस समय मैं उसके बारे में कुछ कहना ज़रूरी समझता हूँ। मजबूरी के कारण बड़े संकोच से उसे लिख रहा हूँ।

मेरे पिताजी ने एक मौलवी साहब को रख कर बचपन में मुझे फ़ारसी पढ़वायी थी। मैंने ख़ालकबारी से आरम्भ कर गुलिस्तां बोस्तां तक पढ़ा था। उर्दू कविता से मुझे लड़कपन से ही प्रेम है। ग़ालिब, ज़ौक़, मीर और ज़फ़र मेरे प्रिय कवि हैं। बिस्मिल इलाहाबादी, हज़रत नूह नारवी के शागिर्द थे। वे खुद उर्दू के अच्छे शायर थे। उनके कारण मुझे नूह नारवी साहब की शायरी का परिचय हुआ। फ़िराक़ गोरखपुरी मेरे साथी थे और न मालुम उन्होंने कितनी बार अपने या मेरे घर पर मुझे अशआर सुनाये। अपने अशआरों के सिवाय वे बहुधा दूसरों के अशआर भी सुनाया करते थे। श्री जोश मलिहाबादी से भी मेरा अच्छा परिचय था। जब मैं उत्तर प्रदेश का एजूकेशन ऐक्सपेंशन अफसर था तब हर साल 'लिटरेसी डे' (साक्षरता दिवस या योम ए-तालीम) मनाता था, और उस दिन साल भर के काम की रिपोर्ट निकालता जिसमें साक्षरता या लिटरेसी पर हिन्दी में विद्या या इल्म के ऊपर कविता और उर्दू में नज़्म भी छापता था। एक साल मैंने हज़रत जोश से उसके लिए एक नज़्म लिखने की दर्ख़ास्त की जो उन्होंने मेहरबानी करके कबूल की, और उनकी नज़्म छापने के लिए मुझे गर्व है।

जब १९२२ में मैं पहली बार लखनऊ आया और चार वर्ष यहाँ रहा तब हजरत सफ़ी जीवित थे। मैं बार-बार उनसे मिलने और उनका कलाम सुनने उनके दौलतखाने पर जाता था। उनकी सुनायी एक ग़ज़ल के कुछ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिसरे आज जव मैं ८९ वर्ष पूरे करने वाला हूँ और आईने में अपना चेहरा देखता हूँ तो अक्सर मुझे याद आ जाते हैं :

कल जो आईने में रुख की झुर्रियां देखा किये,
कारवाने-उम्रे रफ़्तां के निशां देखा किये।
ज़ोर ही क्या था, जफ़ाए-बाग़वां देखा किये,
आशियां उजड़ा किया, हम नातवां देखा किये।

जनाव सीमाव अकवरावादी भी मेरे दोस्त थे और मुझ पर वड़ी मेहरवानी करते थे। मेरे कहने पर उन्होंने भगवान कृष्ण पर लिखी अपनी कुछ नज़्में और कुछ नई नज़्में लिख कर मुझे उनका संग्रह दिया, और खुद ही उन्होंने उस किताव का नाम कृष्ण गीता रखा। मैंने इंडियन प्रेस, इलाहावाद से वड़े अच्छे ढंग से उसे छपवा दिया था। उनकी दी हुई हाथ की लिखी असली वेशकीमती कृष्ण गीता की कापी आज भी मेरे महत्वपूर्ण पुस्तकों के संग्रह में है। जव मैं एजूकेशन अफ़सर था तव मैंने गांवों में १२ सौ पुस्तकालय खोले थे। यद्यपि गाँवों में उर्दू पढ़नेवाले कम होते थे फिर भी जितने रुपयों की पुस्तकें खरीदता था उसमें प्रायः २० से २५ प्रतिशत रुपयों तक की उर्दू पुस्तकें होती थीं। 'लिटरेसी डे' पर जो रिपोर्ट निकालता था वह हिन्दी और उर्दू दोनों में होती थी।

अकवर इलाहावादी का मैं वड़ा प्रशंसक रहा हूँ। इसका कारण यही नहीं कि वे मेरी तरह इलाहावाद के थे, वल्कि इसलिए कि वे उर्दू और इलाहावाद के समानरूप से गौरव थे। मैं उनकी इतनी इज्ज़त करता हूँ कि मैंने उनकी एक वड़े साइज की आइल पेंटिंग इलाहावाद की हिन्दुस्तानी एकाडमी को भेंट की जो आज भी उसके हॉल में लगी है।

'ज़माना' के ऐडीटर स्व० श्री दयानारायण निगम मेरे वड़े गहरे दोस्त थे। मेरे पास 'ज़माना' की पन्द्रह-वीस वर्षों की फाइलें हैं। निगम साहव से उर्दू अदव और जर्नलिज़्म की वहुत-सी वातें मालूम होती रहती थीं। जनाव नियाज़ फतेहपुरी भी कभी-कभी इलाहावाद में मिलने की मेहरवानी करते थे।

अव मैं (जैसा ऊपर वता चुका हूँ) ८९ वर्ष का हूँ। आँखें कमज़ोर हो गयी हैं। ज्यादा पढ़-लिख नहीं सकता, फिर भी उर्दू अदव, विशेषकर शायरी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में दिलचस्पी अब भी है। मैं उर्दू साहित्य का प्रशंसक हूँ। फ़ारसी के शब्द जो स्वाभाविक रूप से आ जायें उन्हें मैं ठीक समझता हूँ। पर आजकल उर्दू के कुछ अदीव उसे नीम फ़ारसी बनाने की जो कोशिश कर रहे हैं उसका मैं विरोधी हूँ। मेरी समझ से उर्दू को अगर आमफ़हम बनाना है तो उसे फ़ारसी के इतने बोझ और फ़ारसी तथा अरबी के व्याकरण से मुक्त करना होगा। वकील और शरीफ़ शब्द चलेंगे, पर उनके बहुवचन वकीलों न कि वकला, शरीफों न कि अशराफ़ चलने चाहिए।

मैं यह भी मानता हूँ कि फ़ारसी विदेशी भाषाओं में हमारे सबसे नज़दीक है। दोनों ही आर्य भाषाएँ हैं। ईरान की ज़िन्दावस्ता और भारत की वैदिक भाषा एक दूसरे के अत्यन्त निकट हैं। पुरानी फ़ारसी और संस्कृत बहिनें हैं—हस्त=दस्त, हफ़्ता=सप्ताह, अश्व=अस्प आदि सैकड़ों नमूने दिये जा सकते हैं। इसलिए मैं हिन्दी में संस्कृत के बाद असली फ़ारसी शब्द ही लेना पसंद करता हूँ। पर इधर कुछ सदियों में पुरानी फ़ारसी पर पड़ोसी देशों की भाषाओं के जो प्रभाव पड़े, उनके कारण नयी फ़ारसी बहुत कुछ बदल गयी है और अपना असली रूप बहुत कुछ खो बैठी है। सही या ग़लत, मेरी यही धारणा है।

यह सब लिखने का मंशा केवल यह बतलाना है कि मैं उर्दू का विरोधी नहीं हूँ। मैं उसके साहित्य की इज़्ज़त ही नहीं करता, उसमें आनन्द भी लेता हूँ। यदि उर्दूवाले फ़ारसी शब्दों का लेना कम कर दें, देशी शब्दों का अधिक इस्तेमाल करें और उर्दू को देवनागरी भाषा में भी लिखने लगें, या 'कम से कम' उसमें लिखने का विकल्प या आप्शन दे दें तो आज जो हिन्दी और उर्दू में फर्क है वह धीरे-धीरे दूर हो जायेगा। हिन्दी पर उर्दू का, और उर्दू पर हिन्दी का प्रभाव पड़ेगा और धीरे-धीरे एक ऐसी भाषा विकसित हो जायेगी जो वास्तव में "मुश्तर्का" होगी और हमारे राज्य में हिन्दी उर्दू का झगड़ा इतिहास की एक कड़वी याद भर रह जायेगा।

[इस पुस्तिका में प्रकट किये गये विचार मेरे अपने विचार हैं। उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन उनके लिए उत्तरदायी नहीं है। —श्रीनारायण चतुर्वेदी]

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रकाशक :

डॉ० राजेश्वर सहाय त्रिपाठी

प्रधानमंत्री, उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन

प्रतापगढ़ (उ० प्र०)

© श्रीनारायण चतुर्वेदी

प्रथम संस्करण : मार्च, १९८२ : २,०००

पुनर्मुद्रण : जुलाई, १९८२ : २,०००

प्रचारार्थ

प्रतीक मूल्य दो रुपये

(डाक व्यय अलग)

मुद्रक—हिन्दुस्तानी आर्ट कॉटेज, लखनऊ–२२६००१

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE